द फ्रैंकफर्ट अमेरिकन (१६. ६. ७०) से

कतरनें

S-1

सिंह दम्पति जर्मनी में

The scene : The Frankfurter Hof hotel where a large-scale reception is being held for Dr. Singh and his beautiful princess wife, Maharani Yasho Rajya Lakshmi of Jammu and Kashmir.

Flowers are suspended in baskets from the ceiling. A flower fantasy map of India is the focal point of one wall. Food abounds around three sides of the room, centered by a replica of the Taj Mahal created in pale yellow cheese. Beautiful sloe-eyed women in brocade and silk saris decorate the room; handsome Indian businessmen mingle with their European and American counterparts. If an elephant had come swaying through the crowd no one would have been surprised. Such was the atmosphere created in this exotic blending of East and West.

Convinced that all maharajas are handsome male gods, all princesses are fairy queens living a life of [illegible] splendor amid places throbbing with servants, casually sweeping aside [illegible] jewels before breakfast, and blowing rosepetals with every word, it came as a bit of surprise at the press conference later, that these elegant beings from farthest India were real people. Concerned with real things. Like tourism Or aviation Or education. Or government. Or poetry.

At 36 Dr Karan Singh is the youngest person ever to become a Central Cabinet Minister. To do th Dr. Singh resigned his governorship and stood for election to the Lower House of Parliament in his native state. He won with a majority of 250,000 votes, thereby creating another fable. He also holds the honorary rank of major general in the Indian Army. He is the author of half a dozen books which include writings on political science, essays of a philosophical nature, translations of folk songs and is noted as a poet and writer of songs. He is a keen student of Indian classical music. He is the father of two sons and one daughter. A prince in any time . . . any country.

And what about the beautiful Princess Yasho? Possessed of fascinating good looks, intelligence, and elegance, her hands are as giving and graceful as her total personality.

Daughter of a maharaja from a well-known Nepali family. Her Highness devotes herself to social work: she is chairman of the State Social Welfare Board which established a network of social welfare centres in the Indian states covering everything from crafts to family planning clinics. She has also worked for the inmates of a blind home and has helped to organize social work in hospitals and nursery schools. As chairman of the Ladies Club (what? ? ? Even in India? ? ?) she organized a special fund for poor students and has helped causes like the Bihar famine.

Her interests begin with her family and husband, but when time permits she enjoys painting, interior decoration and cooking.

—*MARGOT WILSON*

प्रवासी भारतीयों से

भारतवासी विश्व के कोने २ में बसते हैं। वे कहीं भी गये, उन्होंने उस समाज को अपना लिया तथा वहां के जनजीवन में घुल-मिल कर एक हो गए। उन्होंने अपनी बौद्धिक क्षमता से खूब धन और नाम ही अर्जित नहीं किया वरन् सांस्कृतिक मूल्यों तथा अपनी क्रियात्मक योग्यता द्वारा भी विदेशियों को प्रभावित किया है।

आज जब भौतिकवाद के ज़हरीले आक्रमण से त्रस्त पश्चिमी समाज दिशाहीन हो चुका है तो न्यूयार्क और लंदन की सड़कों पर 'हरे राम' 'हरे कृष्ण' की धुन पर गाते-नाचते युवा शून्य में एक नया संबल खोजने का प्रसास कर रहे हैं। अर्चना और निष्ठा के वातावरण में जन्मी भारतीय साधना पद्धति ही भटकती मानवता के लिये एकमात्र चिकित्सा है। जहां बंधन न रहें, वह या तो स्वर्गीय होता है या उच्छृंखल। बंधन हमारा ध्येय भी नहीं हैं परन्तु ऐसा हम अपनी ही शैली में देवी के निकट पहुंचने के लिये करना जानते हैं। संतुलन के जिन आयामों को भारतीय मानस अपने विकास के अनगिन वर्षों में छू पाया है, हम तीव्रतम प्रहारों के बावजूद उन्हें छोड़ पायेंगे इस में संदेह है।

अब हम विश्व के इतिहास में एक नए कगार पर आ खड़े हुए हैं। लेने का समय समाप्त हो गया, अब देने की बारी है। हम विदेशों में बसे अपने भारतीय भाइयों से अनुरोध करते हैं कि वे समय के निर्देश को समझें और विदेशों का सक्रिय रूप से भारतीयकरण करें। उनका प्रयास निश्चय ही विदेशियों को आत्मिक शान्ति प्रदान करेगा और हमें देगा अपने कर्त्तव्य-पालन से मिलने वाला सन्तोष।

सम्पादक

※ दो विदेशी कविताएं ※

फ्रेडरिक जॉर्ज स्कॉट

मूल कैनेडियन

●

हिमपात

हिमावरण छिपा अम्बर
शुभ्र धवल वनपथ
ज्योतिर्मय ईश्वर
निरीक्षण हेतु मेघरथ
वन में नीरव हिमपात
स्लेज (कबाड़ी की) का चर्रमर्र
जगतनियंता के गायक
स्वर्ग में व्यस्त निरंतर

त्रिदेव का सिंहासन
पूजारत अनगिन
पथ लंबा श्वेत गगन
शांत वन

★★★

ईवान जोन्स

मूल आस्ट्रेलियन

●

अंतर्ध्वनि

सारी बात समाप्त
औ झरे प्रश्न
पेंच खाई भाषा से
मैं और मैं एक रह गये;
मेरा सच्चा भेदी
क्षय होता तन समझो :
हैं अतीत के कर्म सुमिरते
कैसे केवल चाम
पतन बनता जाता है
और जो करता मैं हूं
सभी हुआ है
किंतु जानता जो भी
है वह नहीं ज्ञात
सारा का सारा।

★★★

अनुवाद : राजेन्द्र मोहन कौशिक

डॉ० प्रशान्त कुमार वेदालंकार

संस्कृत के बिना भारतीय भाषाएं सूख जाएंगी

पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के अन्ध प्रभाव के कारण तथा अदूरदर्शी दृष्टिकोण के कारण शिक्षा के क्षेत्र में संस्कृत की अत्यन्त उपेक्षा हो रही है। त्रिभाषा फार्मूला बनाते हुए भी सस्कृत के महत्व का ध्यान नहीं रखा गया। यदि संस्कृत की इसी प्रकार से उपेक्षा होती रही तो हमारे राष्ट्र को अनेक हानियां उठानी पड़ेंगी। संस्कृत केवल आध्यात्म विद्या का ही भण्डार नहीं है वरन् वह अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, नीतितन्त्र, राजतन्त्र, शिल्प-कला, भौतिकी, रसायन और आयुर्वेद आदि का अक्षय कोष है। दर्शन एवं काव्यशास्त्र का जैसा तात्विक विवेचन इस भाषा में हुआ है वैसा विश्व की किसी भी भाषा में अनुपलब्ध है। इसका साहित्य भी अन्य भाषाओं के साहित्यों की तुलना में अद्वितीय है। उपलब्ध भाषाओं में सब से अधिक प्राचीन होने के कारण भाषा विज्ञान की दृष्टि से इसका महत्व विश्व की प्रत्येक भाषा से अधिक है। परिणामत: प्रत्येक राष्ट्र इसके अध्ययन-अध्यापन की विशेष व्यवस्था कर रहा है। पाणिनी ने इस भाषा का व्याकरण सूत्र रूप में जितना वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है वह विश्व की हर भाषा के लिए अनुकरणीय है। संस्कृत की उपेक्षा का अर्थ है अपने गौरवपूर्ण इतिहास एवं वसुधैव कुटुम्बकं के संदेश पर आधारित संस्कृति को मटियामेट कर देना। अपने इतिहास और अपनी संस्कृति को नष्ट कर देने के उपरान्त इस देश को भारत कहने का कोई अर्थ ही नहीं है।

संस्कृत हीं एक ऐसी भाषा है जिसका अध्ययन

अध्यापन परम्परा से इस राष्ट्र के प्रत्येक प्रदेश में स्वत: ही हो रहा है। संस्कृत ही एक ऐसी कड़ी है जो इस देश के एक प्रदेश को दूसरे प्रदेश के साथ सम्बद्ध कर रही है, क्योंकि इसके विद्वान सर्वत्र उपलब्ध हो जाते हैं। संस्कृत ही एक ऐसा माध्यम है जो हमारे संस्कारों, धार्मिक आस्थाओं, रीति रिवाजों एवं परम्पराओं में समान रूप से प्रत्येक प्रदेश में प्रयुक्त होता है। शिक्षा का सम्बन्ध व्यवसाय से होने के कारण त्रिभाषा फार्मूला स्वीकार कर लेने के उपरान्त संस्कृत के अध्ययन के प्रति उपेक्षा स्वाभाविक है। उस अवस्था में जो संकट संस्कृत पर आएगा वैसा न मुस्लिम काल में आया था और न ब्रिटिश काल में। संस्कृत के प्रति उपेक्षा से राष्ट्र की एकता खण्डित हो जाएगी। राष्ट्रवृक्ष समूल छिन्न भिन्न होकर गिर पड़ेगा।

किन्तु मैं राष्ट्र की भाषा-समस्या के प्रसंग में संस्कृत का पक्ष केवल संस्कृत के उपर्युक्त महत्व के कारण नहीं ले रहा, वरन् भाषा विज्ञान का एक विद्यार्थी होने के कारण संस्कृत के बिना भारतीय भाषाओं की होने वाली महान हानि का निर्देश करना आवश्यक समझता हूं। आज हमारी भाषाओं को विभिन्न विषयों के पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता है, जिन की पूर्ति संस्कृत साहित्य के महान शब्द भण्डार से ही सम्भव है। संस्कृत का शब्द भण्डार इतना विस्तृत है कि उस से गणित, विज्ञान, भूगोल, इतिहास, दर्शन, राजनीति, अर्थशास्त्र, विधि आदि प्रत्येक विषय के शब्दों की प्राप्ति हो सकती है। संस्कृत में विरचित स्मृति ग्रंथ, 'रामायण, महाभारत, कौटिल्य, अर्थशास्त्र, शुक्रनीति, विदुरनीति आदि में सामाजिक विज्ञान से सम्बद्ध प्रत्येक शब्द विद्यमान है। इसके अतिरिक्त भारत संघ में चालू प्रत्येक भाषा संस्कृत की पुत्री है अथवा उसका इससे घनिष्ठ सम्बन्ध है। पुत्रियों को मां से पृथक् करने का प्रयत्न अपने आप में ही निन्द्य है। यहां की प्रत्येक भाषा में आधे से अधिक शब्द संस्कृत के हैं। संस्कृत एक ऐसा सूत्र है जो हर भाषा में समान रूप से पिरोया हुआ है। इस कथन की प्रामाणिकता प्रदर्शित करने के लिए कुछ निदर्शन प्रस्तुत करने अनिवार्य हैं।

(१) बंगला और संस्कृत :

बंकिम चन्द्र के 'बन्दे मातरम्' सुजलां सुफलां आदि तथा रवीन्द्र के 'राष्ट्रगीत' जन गण मन अधिनायक जय हे आदि बंगला गीतों के शत प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। इसके अतिरिक्त गीताञ्जलि के निम्नोक्त गीत को देखिए—

आमार सकल अंगे तोमार परश,
लग्न हये रहियादे रजनी दिवस।

आदि में सफल, अंग परश, लग्न, रजनी, दिवस आदि संस्कृत के शब्द हैं। तथा—

बहे निरन्तर अनन्त आनन्द धारा,
बाजे असीम नभ माझे अनादित,
जागे अगण्य रविचन्द्र तारा,
एकेक अखण्ड ब्रह्माण्ड राज्ये।

आदि में संस्कृत के ही शब्दों की बहुलता है। चटर्जी के अनुसार बंगला के ९६ प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। इन में से ७५ प्रतिशत शब्द ऐसे हैं जो हिन्दी में भी प्रचलित हैं।

(२) मराठी और संस्कृत :

सन्त तुकाराम का निम्नोक्त पद देखिए—

पवित्र तें कुल पावन तो देश, तेजें हरिचे दास जन्म घेंटो।
कर्म धर्म व्यांचे जाला नारायण, त्याचेनि पावन निन्हीं लोक ॥

इसमें पवित्र, कुल, देश, जन्म, पावन, कर्म धर्म, नारायण, लोक आदि संस्कृत शब्द हैं। मराठी में भी ९६ प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं।

(३) असमिया और संस्कृत :

असमिया का एक पद देखिए—

शत निराशार भरा हृदयर आशार प्रतिमा,
प्रिया चारु मोर अकालत काढ़ि निला दयामय।
करिला ये मोक छलना थोर ॥

इसमें शत, निराशा, हृदय, आशा, प्रतिमा, चारु, प्रिया, अकाल, दयामय, छल आदि शब्द संस्कृत के हैं।

(४) उड़िया और संस्कृत :

उड़िया के कवि गोपबन्धुदास का एक पद देखिए—

धन्य का जोरी ते तीर नीलिए परिचित्र।
देखि के ऊ मूढ़ मानस न हुअई अपवित्र ॥

इसमें धन्य, तीर, परिचित्र, मूढ़, मानस, अपवित्र आदि शुद्ध संस्कृत के शब्द हैं। उड़िया में भी ९५ प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं।

(५) गुजराती और संस्कृत :

गुजराती का एक गीत देखिए—

वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीड़ पराई जाणे रे।
परदे:खे उपकार करे तो ये मन अभिमान न:जाणे रे।
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी; पर स्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर धन नव फाले हाथ रे।

आदि में वैष्णव, जन, परदु:ख, उपकार, मन, अभिमान, समदृष्टि, तृष्णा, त्याग, स्त्री, जिह्वा, असत्य, धन, नव आदि संस्कृत के ही शब्द हैं। इनके अतिरिक्त पराई, हाथ, आने करे, कहिए आदि तदभव शब्द हैं जिनका प्रयोग हिन्दी में भी होता है। गुजराती में ९३ प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं।

(६-७) पंजाबी, काश्मीरी और संस्कृत :

सुखमनी के निम्न वाक्यों को लीजिए—

सिमरउ सिमर-सिमर सुख पावउ कलिकलेस तन माहि मिटावउ।
सिमरउ जासु विस्वभर एकै नाम जपत अनगत अनेके।

आदि में सुख, तन, नाम आदि तत्सम तथा शेष प्राय: तद्भव शब्द हैं। पन्जाबी में ९० प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। इसी प्रकार काश्मीरी में भी कम से कम ८० प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं।

दक्षिण भारत की भाषाएं और संस्कृत

डॉ० टेलर, डॉ० गुण्डर्ट, प्रो० राइस डेविड्स तथा ताम्बी पिल्ले एव श्री आयंगार आदि के अनुसार दक्षिण भारत की भाषाओं का संस्कृत से सम्बन्ध नहीं है। किन्तु वस्तुत: यह सत्य नहीं है। इस प्रकार की मिथ्या धारणाएं उत्तर तथा दक्षिण भारत के लोगों तथा आर्यों और द्राविड़ों अथवा ब्राह्मणों और ब्राह्मणेतरों में परस्पर विद्वेष उत्पन्न करने के लिए प्रचारित की गई हैं। इन भाषाओं की भी संस्कृत के साथ अद्भुत समानता है।

(१) मलयालम और संस्कृत :

महाकवि वल्लाथोक के निम्नोक्त पद्य को देखिए—

गीतवकु मातावाय भूमिये दृढ़ मितुमतिरियोह कर्मयोगिये प्रसविक्कू।
हिमवद् विन्ध्याचल मध्यदेशत्ते काणू शममे शौलिच्चे लुवितरम् सिंह त्रिने।

आदि में गीत, भूमि दृढ़, मति, कर्मयोगी प्रसव, हिमवद्, विन्ध्याचल, मध्यदेश, शम, शील, सिंह संस्कृत के ही शब्द हैं। मलयालम में ८० प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं।

(२) तेलगू और संस्कृत :

तेलगू का एक पद देखिए—

सदा शिवं शिखाग्र मध्ये प्रणवमूल ज्योति।
हृदयपुण्यरीककमलं नियं परं ज्योति॥

इस में शत प्रतिशत शब्द संस्कृत में हैं। तेलगू में पानी के लिए नीरु, अन्न के लिए अन्नमु, भोजन के लिए भोजनमु, जल्दी के लिए त्वरवत अथवा शीघ्रमुगा, साफ के लिए स्वच्छमु, कपड़े के लिए वस्त्रमु, पुस्तक के लिए पुस्तकमु, दिए के लिए दीपमु आदि का प्रयोग हो रहा है। तेलगू में ७५ प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं।

(३) कन्नड़ तथा संस्कृत :

श्री सत्यधान तीर्थ कृत 'अद्वैत मत विचार' नामक पुस्तक का निम्नोक्त वाक्य देखिए—

"नानाविध दुःखमन्नु अनुभविसुव जीवर दुःख निवृत्तिगोस्कर श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि साधन गलन्तु उपदेशि सुन वेदगल अनुसारवागि भगवदर्पण" आदि। यहां नानाविध, दुःख, निवृत्ति, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, साधन उपदेशानुसार आदि शुद्ध संस्कृत शब्द हैं। कन्नड़ में ६५ प्रतिशत शब्द संस्कृत के ही हैं।

(४) तामिल और संस्कृत :

तामिल का सम्बन्ध संस्कृत से बिल्कुल नहीं माना जाता। किन्तु यथार्थ स्थिति के ज्ञान के लिए तामिल की एक पुस्तक—श्री राम मिथुलिम का उद्धरण देखिए—'नगर चेहुं शिव धनुषै अतिशीघ्र बडैथु जनक पुत्रि सीता देव्यै विवाहं मुदिन्दहूँ प्रजैकल दम्पतिकुलै अति संतोष तुड़न अंगि हाटं शैदनतृ' आदि में नगर, शिव धनुष, अतिशीघ्रम्, विवाह, प्रजा, दम्पत्ति, संतोष आदि संस्कृत के शब्द हैं। इसी प्रकार ग्रामम्, पट्टणम्, (पत्तनम्) जलम, हृदय्, पुस्तकम् आदिहमु (अधिकम) पशु, मात्रम्, वार्तै (वार्ता), शुद्धम् (शुद्धम्), पत्तिरम् (पात्रम्), फलमे (फलम्), पाठम् (पाठ) आदि अनेक संस्कृत शब्दों का प्रयोग तामिल में हो रहा है। वस्तुत: तामिल में पांचों वर्गों (कवर्गादि) के प्रथम चार वर्णों (क, ख, ग, घ) आदि के स्थान पर केवल प्रथम वर्ण (क्, च्, ठ्, त्, प्) का ही प्रयोग होता है जिस कारण अपभ्रंश को समझने में कठिनाई होती है। वस्तुत: तामिल में भी ५० प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं।

इस प्रकार भारतीय भाषाओं का संस्कृत से घनिष्ठ सम्बन्ध ठहरता है। इन भाषाओं में ध्वनि, शब्द, रूप, अर्थ, वाक्य एवं मुहावरे सभी संस्कृत से आये हैं। साथ ही इन भाषाओं का लेखक विचार भी संस्कृत से ही ग्रहण करता है। साहित्यकार संस्कृत कवियों की कल्पनाओं को ही अपने साहित्य में स्थान देता है।

व्यावहारिक दृष्टि से संस्कृत का लाभ यह है कि संस्कृत ही एक ऐसा माध्यम है जो एक भाषा को दूसरी भाषा के निकट ला सकता है। जब किसी दूसरी भाषा के प्रदेश के ग्राम में अंग्रेज़ी असफल हो जाती है, प्रादेशिक भाषाएं समझ में नहीं आतीं तब संस्कृत का ही कोई शब्द व्यवहार को सुगम बनाने में समर्थ सिद्ध होता है।

यूं तो मैं किसी भाषा के स्वरूप को निर्धारित करने के पक्ष में नहीं हूँ, भाषाओं का विकास स्वत: होता है, और उसका स्वरूप अपने आप ही निश्चित होता है किन्तु यदि राज्यभाषा हिन्दी का स्वरूप निर्धारित करना आवश्यक ही हो तो उसे संस्कृतनिष्ठ बनाना होगा तभी वह सभी प्रदेशों के लोगों के लिए समान रूप से ग्राह्य होगी। ऊपर उद्धृत अनेक पद हिन्दी भाषा के लिए गाह्य हैं, उसका एकमात्र कारण यही है कि उनमें संस्कृत के अनेक शब्दों का प्रयोग है। यदि सभी भारतीय भाषाओं की लिपि देवनागरी कर दी जाए तो सभी भाषाएं सीख लेनी भी कठिन नहीं हैं।

संस्कृत के उपर्युक्त महत्व को देखते हुए भारत के प्रत्येक छात्र के लिए किसी न किसी स्तर पर संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य है। इसके लिए एक तो संस्कृत को लोकप्रिय विषय बनाने का प्रयत्न करना चाहिए तथा दूसरे प्रत्येक भारतीय भाषा के पाठ्यक्रम में उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं तक ५० अंकों का संस्कृत का एक अतिरिक्त प्रश्न-पत्र निर्धारित कर देना चाहिए। इससे जहां हमारे देश की सभी भाषाएं संस्कृत के सम्पर्क से समृद्ध होंगी वहां वे सभी लाभ भी होंगे, जो हमने ऊपर बताएं हैं। सच तो यह है कि संस्कृत की उपेक्षा राष्ट्र का कोई प्रदेश स्वीकार नहीं करेगा।

धन्यवाद !

I am desired by the President to thank you for sending copies of Dharam Marg which contains the poem "MANJUNATHESHWAR STOTRA" composed by Shrimati Giri.

—S. Nilakantan,
Dy. Secretary to
The President of India,
New Delhi.

कल ही धर्म मार्ग का नवीन अंक मिला। कल ही पूरा पढ़ लिया। मुखपृष्ठ पर भाई राजेन्द्र जी की रचना 'सहकारी' बहुत पसन्द आई। उनके द्वारा कैनेडियन रचनाओं का अनुवाद भी प्रशंसनीय है। लेखकों के नाम पढ़ कर बहुत प्रसन्नता होती है; क्योंकि बड़े-बड़े लेखक इस पत्रिका को अपना सहयोग दे रहे हैं।
ईश्वर से प्रार्थना है कि इस पत्रिका को सदा उन्नति के पथ पर अग्रसर करते रहें।

—किशन शर्मा
नागपुर

हाल ही में जम्मू-काश्मीर सरकार द्वारा जम्मू के राजकीय आयुर्वेदिक कालेज को बंद करने के निर्णय से भारतीयता प्रेमी जनता में भारी रोष फैल गया है। आपने धर्म मार्ग के माध्यम से जनता के इस रोष को केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री श्री के. के. शाह तथा राज्य के मुख्य मन्त्री श्री सादिक तक पहुंचाने के साथ-साथ सारे राष्ट्र की भारतीय संस्कृति प्रेमी जनता के पास पहुंचाने का जो साहस किया है उसके लिये हम आपके अत्यन्त आभारी हैं।
निश्चय ही अपनी निष्पक्ष, निर्भीक, स्वतन्त्र तथा भारतीय संस्कृति के अनुकूल नीति के कारण अब धर्म मार्ग ने उच्च स्तर की पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

— पं० हरि राम वैद्य
पो० सियालना
जिला : कठुआ (जम्मू)

कमलाकान्त हीरक

काश्मीर से मोह

चिनार बनों की सरसराहट
चीड़-वृक्षों के हिलते पत्तों की रुनझुनाहट
छोटी-बड़ी झीलों में खिलते कमल के फूल
और उनकी बहती हुई भीनी सुरभि
दूर-पास दीखते नाशपाती के ठिगने वृक्षों की कतारें
अंगूर लताओं की उलझी टहनियों का मधुमय संगीत
झेलम प्रपात की चंचलता
चेरी के मुग्ध फूलों की हंसी
बुलबुल की चहक से गूंजती हुई घाटियां
हृदय को झकझोरती, ठण्डी बहती हवा
स्वप्निल पंखों वाली तितलियों की अठखेलियां
पर्वत श्रेणियों पर जमी बर्फ़ की लावण्यमयी शोभा
ये संवरे हुए प्रकृति के रूप
और 'उसकी' कारीगरी का चरम उत्कर्ष
मेरी आंखों की काली पुतलियों में
अमिट चित्र बन कर समा गये हैं—
जिन्हें मैं भूल नहीं पाता
क्योंकि जीवन भर मैंने
इस धरती के सौन्दर्य बोध को
अन्तर में छुपा कर सांसें ली हैं
इसीलिये तो
काश्मीर से मुझे मोह है।



जगदीश प्रसाद द्विवेदी

आध्यात्म सुधा

पुनर्जन्म : मरणोपरान्त व्यक्ति का अस्तित्व रहता है यद्यपि वह स्थूल नेत्रों से देखा नहीं जा सकता। उसके द्वारा उत्पन्न होने वाले प्रभावों और घटनाओं को देखकर ही उसके अस्तित्व का अनुमान लगाया जाता है। इतना ही नहीं, अपितु मृत व्यक्ति से वार्तालाप भी सम्भव है, भेंट भी हो सकती है। ऐसा अनेक व्यक्तियों ने अनुभव किया है। इस विषय में अब तक इतना साहित्य एकत्रित हो गया है कि हम उसे सरलता से ही भ्रम कहकर नहीं ठुकरा सकते। स्प्रिट फोटोग्राफी में भी सफलता प्राप्त की गई है। "सूक्ष्म लोक में जागृत व्यक्ति" मरे हुए लोगों से आमने सामने भेंट भी कर सकते हैं। समाचार पत्रों में समय समय पर अनेक बालकों द्वारा अपने पूर्वजन्म की घटनाओं का वर्णन प्रकाशित होता रहता है, जो छानबीन करने पर सत्य पाया गया है। पातञ्जलि योग दर्शन में वर्णित है कि संस्कार संयम से पूर्वजन्म का बोध होता है। योगी अपने पूर्वजन्म को भली भांति जान सकता है। यह अनुभवगम्य सत्य है। यदि पूर्वजन्म न होता हो, तो उपर्युक्त तथ्यों की सम्भावना नहीं रहती।

जो वस्तु अविच्छिन्न बनी रहे उसी का पुनर्जन्म हो सकता है। मनुष्य का शरीर नष्ट हो जाता है। प्राणमय शरीर स्थूल शरीर के उपरान्त बना रहता है। वास्तव में इसी के निकल जाने से शरीर मरता है। परन्तु अवसर आने पर प्राणमय शरीर भी विच्छिन्न हो जाता है। इसलिये इसका भी पुनर्जन्म नहीं हो सकता। प्राणमय से सूक्ष्म मनोमय शरीर है। यह मनोमय शरीर भी सदा रहने वाला नहीं है। इस से भी अधिक सूक्ष्म तथा इसका आधार विज्ञानमय शरीर है। यह वह स्तर है जिसमें आत्म-स्फुरण एवं सूक्ष्म दर्शन आदि सम्भव हैं, जो सविकल्प समाधि की अनुभूति है। समाधि चेतना का यही स्तर है। विज्ञानमय शरीर से भी परे और उसका अवलम्बन आनन्दमय स्तर है। इस आनन्दमय स्तर का विच्छेद असम्भव है। यही समस्त शक्ति का आदि स्रोत है। यही मनुष्य की आत्मा है। यही अविच्छेद्य सत्ता है।

ग्रामोफोन का रिकार्ड भरने में बोलने वाले की शब्द तरंग लुप्त हो जाती है, परन्तु उसका सूक्ष्म स्पन्दन अपने संस्कार रिकार्ड पर छोड़ जाता है। इसी प्रकार विच्छिन्न होने वाला कोष अपनी अनुभूति तथा संस्कार अपने से सूक्ष्म कोष में छोड़ जाता है। और आत्मा में सारे संस्कारों का संचय होता है। ये अनुभवगम्य संस्कार अनुभूति के साथ ही साथ सभी स्तरों पर, आत्मा से लेकर स्थूल शरीर पर्यन्त अंकित होते चले जाते हैं। मृत्यु के उपरान्त व्यक्ति इस प्रकार से अपने कोषों को धीरे धीरे उतारता चला जाता है। नये जन्म को ग्रहण करने के लिये अवसर आने पर फिर अभि-व्यक्ति का क्रम आरम्भ होता है किन्तु फिर पैदा हुए मनुष्य का मन, प्राण, व स्थूल शरीर नये होते हैं। इन में एक रहने वाली तो वह चेतनशक्ति है, जो अविच्छिन्न और आनन्दमय है।

व्यक्ति अपने कपड़े बदला करता है। जिसने कपड़ों की ही पहचान रखी हो, वह व्यक्ति को पहचानने में चूक जाता है। मनुष्य की आकृति में भी परिवर्तन होता है। बचपन का देखा हुआ व्यक्ति बुढ़ापे में पहचानना कठिन और असम्भव तक हो जाता है। व्यक्ति की आवाज प्रायः कम बदलती है परन्तु यदि आवाज भी बदल जाये तो बिना बताये हुए पहचानना बिल्कुल सम्भव नहीं होता है। ऐसी दशा में स्मृति ही सहायक हो सकती है और यदि स्मृति भी लुप्त हो जाये, तब तो पहचानना एकदम असम्भव होगा। ऐसा ही जन्मान्तर का भी खेल है। पुनर्जन्म होने पर मस्तिष्क व मन परिवर्तित हो जाते हैं फिर पूर्वजन्म की याद कैसे रह सकती है? पूर्वजन्म के ज्ञान तथा पूर्व संस्कारों को तो समाधि ज्ञान के द्वारा आत्मा के स्तर और विज्ञानमय स्तर पर ही पकड़ा जा सकता है।

जब मनोमय कोष के स्तर का विच्छेद नहीं हो पाता और उसी अवस्था में व्यक्ति नये शरीर में प्रवेश कर जाता है—जैसा कि अत्यन्त प्रबल मोह अथवा भोग की उत्कट इच्छा के कारण होता है, तब उस दशा में "पूर्वजन्म की स्मृति" बनी रहती है।

एक जन्म के अनुभवों का आलोकन सारे पिछले अनुभवों से होता है, और फिर एक नये व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इस प्रकार विभिन्न जन्मों के द्वारा व्यक्ति विविध अनुभवों को प्राप्त कर ा हुआ, विकास के पथ पर आगे बढ़ता चला जाता है।

"पूर्वजन्म" के ज्ञान के लुप्त होने का क्या प्रभाव होता है? एकदम नये दृष्टिकोण के अनुभव प्राप्त करना तभी सम्भव है, जब व्यक्ति पूर्वज्ञान को खो दे। नूतन व्यक्तित्व का निर्माण भी तब ही सम्भव है। पुराने संस्कारों के आलोकन द्वारा बहुमुखी विकास की अग्रगति के लिये एकदम नूतन व्यक्तित्व की आवश्यकता है। इसीलिये पुरानी स्मृति का ध्वंस भी आवश्यक है। वर्तमान जीवन की आसक्तियां ही व्यक्ति को व्याकुल किये डालती हैं। यदि इसके साथ पिछले जन्मों की स्मृतियां भी लग जायें तब तो जीवन भार ही हो जायेगा। मनुष्य की स्मरण शक्ति इस जीवन के विषय में भी सीमित ही है। पूर्वजन्म सम्बन्धी स्मृति तो और भी सीमित होनी स्वाभाविक है। अतः मनुष्य के हित के लिये ही प्रभु ने यह विधान बनाया है कि पूर्वजन्मों की स्मृति का लोप हो जाता है।

नये जीवन के विषय में कहा जा सकता है कि व्यक्ति जो कुछ है, जहां पर है, वह अपने द्वारा ही प्रेरित शक्तियों का परिणाम है। विकास की सहायिका शक्तियों ने उसे योग दिया है। परन्तु इस विषय में निर्णायक वह स्वयं ही रहा है और उस के अब तक के अभिव्यक्ति क्षेत्र के अनुभव ने उसकी सहायता की है।

व्यक्ति को क्या करना है, इसका निर्णय तो उसे स्वयं अपनी समझ से करना है, परलोक के ख्याल से नहीं। इस जन्म के सुख दुःख प्रायः हमारी मनसा, वाचा, कर्मणा क्रियाओं के परिणाम होते हैं। हम अपनी मनोवृत्तियों के द्वारा अपने लिये दुख सुख उत्पन्न करते हैं। अधिकांश सुख दुख का भार व्यक्ति की इस जन्म की क्रियाओं पर ही है। हम जो कुछ हैं जिस पूंजी के साथ हमने प्रवेश किया था, इस संसार में, उसका आकार पुराने कर्मों में ही है। किन्तु हमें क्रिया करने में पर्याप्त स्वतन्त्रता है। हम अपनी विचार की गति के द्वारा अपने को, उस आधार को भी बदल सकते हैं। अपने कर्मों के द्वारा अपनी पुरानी प्रवृत्ति का भी परिवर्तन कर सकते हैं। कर्मवाद मनुष्य को कर्म-स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाता है, उज्ज्वल भविष्य की आशा दिलाता है और व्यक्ति को अपना भार अपने कन्धों पर उठाना सिखाता है। ●●

केरल का जनप्रिय उत्सव

ओणम्

तातापुरम् सुकुमारन

केरल प्रांत कुछ लोगों को अति समस्यात्मक प्रदेश प्रतीत हो रहा है। इन समस्याओं को सुलझा कर सुधारना भी असाध्य सा लग रहा है। स्विटजरलैंड से भी छोटा, पश्चिम सागर तथा पर्वतों के बीच का यह भूभाग समय समय पर लोगों को विचार करने को बाध्य कर देता है। यह छोटा सा राज्य अपनी प्राचीन सभ्यता की प्रतीकात्मक कला सम्पत्ति को बचा कर सजीव और चेतनापूर्ण रखते आया है।

नारियल वृक्षों की हरियाली से आवृत यह भूभाग मनोहारी प्रदेश बन गया है। यहां के निवासियों के अनेक पर्वों में 'ओणम्' एक मुख्य पर्व है। यह अति जनप्रिय भी हो गया है। सन् १९६१ से केरल सरकार ने 'ओणम्' में भाग लेने के लिये अधिकाधिक प्रवासियों को आकर्षित करने की योजना भी अपनायी है।

'ओणम्' मलयालम पंचांग के प्रथम मास 'चिंगों' में मनाया जाता है। इस वर्ष यह पर्व १३ सितंबर को मनाया जायेगा। केरल में यही 'बसंत काल' तथा 'कृषिफल' काल है। 'ओणम्' के दिन बच्चे इच्छानुसार घूम कर पुष्प संग्रह करते और घर के आंगन को सजाते हैं। पुष्प संग्रह कार्य 'अथं' अर्थात दस दिन पूर्व से ही आरम्भ हो जाता है। यह सजावट पौराणिक व्यक्ति महाबलि के स्मरणार्थ की जाती है। माना जाता है कि बलि चक्रवर्ती इस भूभाग पर शासन करता था और उस समय प्रजा खुशी थी, राजा दयावान था, लोग समभाव से जीवन चलाते थे और चोरी, डाके का नाम तक नहीं था। इस सुशासन से सुरगणों के मन में भी ईर्ष्या उत्पन्न हुई और फलस्वरूप उन सब की प्रार्थना के अनुसार विष्णु ने वामन रूप धारण कर भूमि याचना के बहाने बलि के सम्पूर्ण राज्य को छीन कर उसे पाताल पहुँचा दिया। बलि की प्रार्थनानुसार एक दिन इस भूमि पर आ कर प्रजा को देख जाने की अनुमति उसे दी गई। विश्वास किया जाता है कि बलि 'चिंगों' मास में आयेगा। इसके लिए पौराणिक कथा आधार है। एक और प्रचलित कहानी में बताया जाता है कि महर्षि परशुराम ने केरल भूभाग की सृष्टि कर ब्राह्मणों को दान रूप में दे दिया और आश्वासन दिया कि संकट के समय पर दर्शन देने वह जरूर आयेगा। यह कहानी निराधार है।

केरल के उत्तरी भाग में प्रतिगृह के आंगन को लीप पोत कर पुष्पों से अलंकृत किया जाता है। यह अलंकार माता दुर्गा के प्रीत्यर्थ है। ऐतिहासिक आधार के अनुसार 'ओणम्' बलि के विजेता विष्णु प्रीत्यर्थ है। क्रि. श. ९२० कुलशेखर का समय हिन्दू संस्कृति का सर्वोच्च काल था। 'त्रिक्ककार' देवालय तब ख्याति की चरम सीमा पर था। देवालय के पास प्राप्त शिलालेख में 'ओणम्' से सम्बन्धित एक कहानी है। उस में लिखा हुआ है कि 'ओणम्' अट्ठाईस दिन तक मनाते थे। विश्वास किया जाता है

कि अधिदेवता 'त्रिक्कक्कार अप्पन' वामन रूपी विष्णु हैं। प्रांत भर में केवल यही एक देवालय है जहां वामन मूर्ति प्रमुख देवता है। इसी आधार पर इतिहासकार 'ओणम्' को विष्णु प्रीत्यर्थ बताते हैं। पर यह एक विरुद्ध सम्प्रदाय है कि 'ओणम्' पर्व बलि प्रीत्यर्थ है। आज की प्रथा भी इसी की समर्थक है। गीली मिट्टी से शंकाकृति बना कर पुष्प से सजाते हैं। इसी को 'त्रिक्कक्कार अप्पन' या 'ओणतप्पन' का संकेत मानते हैं। पूजा के बाद परिवार के सब लोग मिलकर विचित्र शब्द के द्वारा 'ओणम्' के आगमन की घोषणा करते हैं। 'त्रिक्कक्कार' देवालय की मूर्ति विष्णु ही होने के कारण 'ओणम्' विष्णु प्रीत्यर्थ बताया जाता है। विश्वास है कि विष्णु प्रीत्यर्थ की जाने वाली सभी पूजाएं बलि को भी प्रिय लगती हैं।

'ओणम्' की महत्ता सूचक कहावत भी प्रसिद्ध है कि 'श्वेत गिरवी रख कर ओणम् मनाओ'। ये दिन विवाहोत्सव के दिन होते हैं। ओणम् के पिछले दिन 'उत्रादम्' से ले कर सात दिन तक पर्व मनाया जाता है। वस्त्रदान (ओनप्पुदन) एक प्रथा है। मालिक परिवार के सब लोग मजदूर किसान आदि को वस्त्र देते हैं। किसान लोग जमीनदार को केले के घौद ला कर अर्पित करते हैं और मालिक से कपड़े पाते हैं। यह प्रथा अब आधुनिक सभ्यता तथा यन्त्रीकरण के कारण ग्रामों तक ही सीमित रह गई है।

ओणम् पर्व की अनेक विशेषताएं हैं। पुष्कल भोजन, परिवार के सब लोगों का एक स्थान पर मिलना मुख्य विशेषता है। स्त्रियों का 'ओनक्कली', पुरुषों का 'पंतक्कली' (देशीय खेल), संगीत सभाएं, मनोरंजक कार्यक्रम पर्व के प्रमुख अंग माने जाते हैं। व्यक्ति व्यक्ति के बीच की स्पर्धा 'ओनत्तले', बालिकाओं के जनपद संगीत के साथ नृत्य 'कैकोट्टक्कालि' चित्ताकर्षक कार्यक्रम हैं और कलात्मक जीवन के परिचायक भी। नारियल वृक्षावृत इस भूभाग के कच्छ प्रदेश के पानी में नाव चलाने की स्पर्धा भी होती है। नैसर्गिक सौंदर्य भूमि, नावों, उन नावों के चालकों की शक्ति तथा गति, उसके अनुकूल तट पर खड़े अलंकृत और उन्मत्त आबालवृद्ध स्त्री-पुरुषों की उत्साहदायी घोषणा, एक दूसरे के साथ होड़ लगाते दीखते हैं।

'ओणम्' प्रमुखतः भ्रातृभाव का पर्व है। जमीनदार और किसानों के बीच की भिन्नता या विषमता को भुला देना और मिटा देना, भ्रातृत्व प्रस्थापित करना ही इस पर्व का प्रयोजन है। 'ओणम्' समभाव तथा वैभवयुक्त 'सुवर्णकाल' का स्मृतिसूचक है।

(लेका)



कश्मीर के अद्वैत शैवमत को दर्शन का विशिष्ट रूप प्रदान करने का श्रेय शैवाचार्य सोमानन्द को है। इसीलिए तन्त्रालोक में 'तर्को योगांगमुत्तमम्' कह कर उसे तर्क का कर्त्ता और व्याख्याता कहा है। प्रत्यभिज्ञा शास्त्र में जिन दार्शनिक सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या है वे सोमानन्द के 'शिवदृष्टि' नामक ग्रन्थ में प्रतिष्ठित सिद्धान्तों का ही प्रतिबिम्ब हैं। अतः सोमानन्द प्रत्यभिज्ञादर्शन का प्रवर्तक माना गया है। आचार्य सोमानन्द के काल का पता लगाने में अब तक जिन विद्वानों ने प्रयत्न किया है उनमें डॉ० कान्तिचन्द्र पाण्डेय का मत प्राचीन है और महत्वपूर्ण समझा जाता है। डॉ० पाण्डेय सोमानन्द को नवीं शताब्दी ईस्वी के मध्य हुआ बताते हैं।

हम यहां सोमानन्द के काल पर नवीन दृष्टि से विचार करना चाहते हैं। सोमानन्द के प्रशिष्य रामकण्ठ के बड़े भाई मुक्ताकण और भट्टकल्लट के अवन्तिवर्मा के राज्यकाल में विद्यमान होने का उल्लेख राजतरंगिणी में है। रामकण्ठकृत भगवद्गीता की टीका से ज्ञात होता है कि रामकण्ठ का बड़ा भाई मुक्ताकण पर्याप्त कीर्ति पाकर रामकण्ठ के द्वारा भगवद्गीता की टीका लिखने के समय तक दिवंगत हो चुका था और रामकण्ठ भी उक्त टीका लिखने के पूर्व साहित्यकार के रूप में विद्वज्जनों से प्रशंसित हो चुका था। इससे मुक्ताकण और उसके छोटे भाई रामकण्ठ में आयु की दृष्टि से १०-१५ वर्षों का (छोटा-बड़ा होने का) अन्तर रहते हुए भी वे दोनों भाई एक काल में थे और इस दृष्टि से

प्रत्यभिज्ञा दर्शन के प्रवर्तक सोमानन्द का काल

डॉ० भंवर लाल जोशी

रामकण्ठ का अवन्तिवर्मा के शासन काल में विद्यमान होना युक्तिसंगत लगता है' भले ही वह अधिक वय का व्यक्ति न रहा हो, हमारा यह निष्कर्ष एक अन्य प्रमाण से भी पुष्ट होता है और वह प्रमाण यह है कि रामकण्ठ ने कल्लट का वृत्तिकार के रूप में उल्लेख किया है, किन्तु उसके नाम के साथ "श्रीमंत्" या "श्री" जैसे सामान्य आदरवाची शब्द का भी कहीं प्रयोग नहीं किया। केवल "भट्टकल्लटेन" ऐसा लिखा है। यदि भट्टकल्लट रामकण्ठ से बहुत पूर्व का सिद्ध रहा होता तो कश्मीर के शैव ग्रन्थकारों की परम्परा के अनुसार रामकण्ठ उसके लिए किसी सम्मानसूचक विशेषण का प्रयोग अवश्य करता, जो उसने नहीं किया। इससे यह अनुमान असंगत नहीं कि मुक्ताकण का अनुज रामकण्ठ, भट्टकल्लट के जीवनकाल में उदीयमान साहित्यकार रहा होगा।

इस से यह भी कहा जा सकता है कि रामकण्ठ का गुरू उत्पलदेव भट्टकल्लट का समकालीन रहा होगा और सम्भवतः उससे बड़ा रहा होगा क्योंकि यदि भट्टकल्लट उत्पलदेव से आयु में बड़ा होता और उत्पलदेव के द्वारा शास्त्र-रचना आरम्भ करने तक कश्मीर में प्रसिद्ध हो जाता तो शैव गृहस्थ

उत्पलदेव उसका उल्लेख अवश्य करता, परन्तु उसके ग्रन्थों में भट्टकल्लट का कहीं उल्लेख न मिलना यह प्रकट करता है कि वह उत्पल का समवयस्क या अल्पवयस्क समसामयिक था।

भट्टकल्लट अवन्तिवर्मा के शासनकाल में था। इसलिए अब अवन्तिवर्मा के शासनकाल का ठीक ठीक पता आवश्यक है। डॉ० पाण्डेय ने अवन्तिवर्मा का शासनकाल ८५५ ई० से ८८३ ई० स्वीकार किया है। किन्तु यह मत सही नहीं है। राजतरंगिणी में कल्हण जहां अजितापीड के राज्य का वर्णन करता है वहां अजितापीड़ के शासन के वर्णन के अन्त में वह लिखता है :

एकोननवते वर्षे स्वस्त्रीये शान्तिमागते।
निर्विघ्नभोगास्तेऽभूवन्षड्विंशाब्दात्ययावधि ॥

उक्त श्लोक में तथ्य की अभिव्यक्ति सुस्पष्ट न होने के कारण इसके दो अर्थ किए जाते हैं। उन में से डॉ० त्रिवेद और प्रो० मनकद के द्वारा गृहीत यह अर्थ अधिक युक्तिसंगत है कि "स्वस्त्रीय की मृत्यु के बाद ८९वें वर्ष में समाप्त हो रहे ३६ वर्षों के अन्त तक उन्होंने निर्विघ्न भोग भोगा।" इस अर्थ को युक्तिसंगत मानने का कारण यह है कि इस अर्थ से ही अजितापीड की २६ वर्षों की शासनावधि का औचित्य सिद्ध होता है। "स्वस्त्रीय" शब्द यहां चिप्पट जयापीड के लिए प्रयुक्त है। चिप्पट जयापीड की मृत्यु के बाद पद्म, उत्पलक, कल्याण, मम्म और धर्म नाम के उसके पांच मामाओं ने निर्विघ्न राजसुख भोगने के लिए अजितापीड को नाम मात्र का राजा बनाया था। कल्हण के निम्नांकित शब्दों से उक्त तथ्य प्रमाणित भी होता है :

देडादिगणनास्थानानिष्यन्दोत्थान्नृपाय ते।
पञ्चमाद्गणनास्थानादशनाच्छादने ददुः ॥
एकसंभाषणात्खेदं यात्स्वन्येषु दिने दिने।
पञ्चतुल्यमुखान्नेच्छद्दुःथो राजा तदाश्रितः ॥
ते राजन्यजितापीडे राज्योत्पत्त्यपहारिणः।
पुरदेव गृहादीनां प्रतिष्ठाकर्म चक्रिरे ॥

पूर्वोक्त ८९वां वर्ष सप्तर्षि संवत् का ३८८९वां वर्ष है और इस प्रकार सप्तर्षि संवत् का ३८८९वां वर्ष अजितापीड की मृत्यु तिथि है।

प्रो० मनकद की खोज के अनुसार सप्तर्षि संवत् का उक्त ३८८९वां वर्ष उस मत-गणना पर आधृत है जिसके अनुसार कश्मीर में सप्तर्षि संवत् का आरम्भ सन् ३१७७ ईसा पूर्व से माना जाता है। इस प्रकार अजितापीड की मृत्यु (३८८९–३१७७) ७१२ ई० में होती है। अजितापीड की मृत्यु के बाद तीन वर्षों तक अनंगापीड और तदनन्तर दो वर्षों तक उत्पलापीड राजसिंहासनस्थ रहे। फिर शूर नामक मन्त्री ने सुखवर्मा के गुणवान् पुत्र अवन्तिवर्मा को राजगद्दी पर बैठाया। इस प्रकार अजितापीड की मृत्यु के ५ वर्ष बाद ७१८ ई० में अवन्तिवर्मा कश्मीर की राजगद्दी पर बैठा।

राजगद्दी पर बैठने पर कुछ समय तक उसे अपने असीम सम्पत्तिशाली बांधवों के उपद्रवों के कारण राजश्री के उपभोग में असुविधा का सामना करना पड़ा और फिर रणभूमि में कई बार अपने

राज्येच्छुक भाई-भतीजों को परास्त करना पड़ा। इस प्रकार अपने राज्य को निष्कंटक बनाने में उसे सम्भवतः लगभग १५ वर्ष अवश्य लग गए होंगे क्योंकि राजतरंगिणी के अनुसार अवन्तिवर्मा के राज्यकाल में दस वर्षों तक प्राणीहिंसा सर्वथा बन्द थी। ये दस वर्ष उसके राज्यकाल के उत्तरार्द्ध के ही वर्ष हो सकते हैं। अंतिम दिनों में वह प्राणान्तक रोग से ग्रसित होकर त्रिपुरेश पर्वत पर ज्येष्ठेश्वर क्षेत्र में जाकर रहने लगा था और वहीं उसने श्रद्धा के साथ भगवद्गीता सुनते हुए तन त्यागा था। अवन्तिवर्मा के रोग-ग्रसित होने और राजवैद्यों के द्वारा उपचार करने पर भी उस रोग से छुटकारा न पाने की स्थिति में ज्येष्ठेश्वर के क्षेत्र में जाकर रहने की पूरी अवधि को यदि वर्ष-छः महीनों की ही मान लें तो भी उसके २७ वर्षों के राज्यकाल में से उत्तरार्द्ध के १०-१२ वर्ष ही उसके राज की सर्वांगीण समृद्धि एवं शान्ति के वर्ष रहे होंगे और उन्हीं वर्षों में उसके यहां मुक्ताकण, शिवस्वामी, आनन्दवर्धन आदि प्रसिद्ध विद्वान रहे होंगे। इन्हीं दिनों में लब्धकीर्ति मुक्ताकण का अनुज रामकण्ठ अल्पवयस्क साहित्यकार रहा होगा और उसका गुरू उत्पलदेव, जो शैव गृहस्थ था, ७०० ई० के आस-पास अवश्य विद्यमान रहा होगा। उत्पलदेव की उक्त तिथि के अनुसार उसके गुरु सोमानन्द का काल उस से ५० वर्ष पूर्व, लगभग ६५० ई० मानना उचित प्रतीत होता है।

सोमानन्द के ग्रन्थ "शिवदृष्टि" के अप्रत्यक्ष संकेतों और कश्मीर के तत्कालीन साहित्यिक वातावरण से भी सोमानन्द का ६५० ई० के आस-पास होना युक्तिसंगत लगता है। सोमानन्द ने अपने उपर्युक्त ग्रन्थ में परपक्ष के खण्डन में सब से पहले वैयाकरणों के शब्दाद्वैत का निराकरण किया है और उस निराकरण में प्रतिवाद की शैली प्रत्यक्ष उत्तर देने जैसी है। यथा—

(क) वैयाकरणसाधनाम् पश्यन्ती सा परा स्थितिः।

(ख) दृशि सकर्मको धातुः किं पश्यन्तीति कथ्यताम्।

(ग) भवद्भिरेव नाप्तस्याननुभूतार्थं वक्तृता।

(घ) अथ स्वानुभवेनैव पश्यन्तीं पश्य युक्तितः।

(ङ) अतोऽस्मात्प्रविरम्यताम्।

इन उद्धरणों में रेखांकित अंशों से यह ध्वनित होता है कि यहां समसामयिक प्रचलित मत के अनुयायी वैयाकरणों के तर्कों की युक्तिहीनता प्रदर्शित की गई है। इस से सोमानन्द के समय कश्मीर में वैयाकरणों के मत का ज़ोर होना चाहिए और इस दृष्टि से जब कश्मीर के इतिहास का अवलोकन किया जाता है तब ज्ञात होता है कि कश्मीर नरेश जयापीड की राजसभा में वैयाकरणों की बड़ी धूम थी। स्वयं राजा व्याकरण का अतिशय प्रेमी था। उसने पतंजलि के महाभाष्य का कश्मीर में पुनः प्रचार करने के लिए कश्मीर के बाहर से धुरन्धर विद्वानों को अपने यहां बुलाया था। उन में क्षीर नामक बहुत बड़े वैयाकरण से स्वयं जयापीड ने व्याकरण पढ़ा तथा महाभाष्य का विधिवत् अध्ययन किया। इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि जयापीड की राजसभा में वैयाकरणों के द्वारा व्याकरण के दार्शनिक रूप का प्रबलता से पुनरुद्धार एवं प्रचलन हुआ। वैयाकरणों ने व्याकरण के क्षेत्र अर्थात

शब्दानुशासन व्यापार को छोड़कर उसे (व्याकरण शास्त्र को) जब मोक्ष-प्रयोजन-वाले शास्त्रों का स्थान देना आरम्भ कर दिया तब उनकी यह मुग्धता ईश्वराद्वयवादी शैवों को अनुचित लगी और उन्होंने सबल युक्तियों से यह सिद्ध कर दिया कि व्याकरण मोक्ष के लिए उपयोगी न होकर बाधक है।

सोमानन्द के द्वारा वैयाकरणों के शब्दाद्वैत का प्रबल विरोध, और वह भी प्रत्यक्ष उत्तर की शैली में, यह प्रकट करता है कि सोमानन्द कश्मीर नरेश जयापीड का समसामयिक रहा होगा। जयापीड का शासनकाल ६२५-६५६ ई० माना गया है और मुक्ताकण के अनुज एवं उत्पलदेव के शिष्य रामकण्ठ के काल-विचार से यही काल सोमानन्द का आता है, जैसा कि इसी लेख में पूर्व कहा जा चुका है।

सोमानन्द का सातवीं शताब्दी ई० के मध्य में विद्यमान रहना एक अन्य प्रमाण से भी उचित प्रतीत होता है। जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है, जयापीड विद्याव्यसनी था। वह किसी राजा को अपने साथ स्पर्धा नहीं करने देता था। किन्तु स्वयं विद्वानों के साथ स्पर्धा करके वह गौरव का अनुभव करता था। कल्हण ने उसे 'जयापीड पण्डितः' कहा है और विद्वानों का प्रामाणिक मत है कि उसने ग्रन्थ रचना भी की थी। जयापीड का प्रच्छन्न नाम कल्लट था, इसका राजतरंगिणी में उल्लेख मिलने से उक्त मत पुष्ट होता है कि विद्वानों के साथ स्पर्धा करने वाला जयापीड सम्भवतः कल्लट नाम से ग्रन्थ-रचना करता होगा और कालान्तर में लोगों को ज्ञात हो गया होगा कि कल्लट नामक व्यक्ति स्वयं जयापीड ही है। इस प्रकार कश्मीर नरेश जयापीड की विद्वता, विद्वद्भक्ति आदि आदर्श गुणों को देखकर ही सम्भवतः भट्ट उपाधि से ज्ञात वंश में उत्पन्न भट्टकल्लट के माता-पिता ने उसका नाम कल्लट रखा होगा। इस से यह अनुमान करना भी तर्क सगत है कि भट्ट-कल्लट के माता-पिता जयापीड के समकालीन थे। जयापीड अपने जीवन के अंतिम तीन वर्षों में दुर्भाग्यवश कायस्थों के प्रभाव में आकर प्रजापीड़क अत्याचारी शासक बन गया था और इस काल में उसने ब्राह्मणों को अत्यधिक दुःख दिया था और अन्त में इट्टिल नामक ब्राह्मण के कोप से कुत्ते की मौत मरा था। इस से यह तथ्य सामने आता है कि भट्टकल्लट का कल्लट नाम उसके माता पिता ने जयापीड के ब्राह्मण-पीड़क एवं अत्याचारी बनने से पहले ही रख दिया होगा क्योंकि फिर तो ब्राह्मणों पर अत्याचार करने वाले जयापीड के प्रच्छन्न नाम को कौन ब्राह्मण अपने पुत्र का नाम रखना पसन्द करेगा? इससे यह कहा जा सकता है कि भट्टकल्लट जयापीड के सन् ६५६ ई० में मरने से पूर्व उत्पन्न हो गया था और जयापीड के जीवनकाल मे उत्पन्न होने से वह जयापीड के ६२ वर्षों के बाद कश्मीर की राजगद्दी पर बैठने वाले अवन्तिवर्मा के समय लगभग ६५-७० वर्ष का हो गया और ऐसी स्थिति में ही कल्हण का यह कथन समीचीन हो सकता है कि श्री भट्टकल्लट आदि सिद्ध अवन्तिवर्मा के राज्य में अवतीर्ण हुए। सिद्ध रूप से प्रसिद्ध होने के लिए ६५-७० वर्षों की आयु का होना आवश्यक भी है। उपर्युक्त तथ्यों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भट्टकल्लट की पूर्व पीढ़ी का शैवाचार्य सोमानन्द भट्टकल्लट के माता-पिता और कश्मीर नरेश जयापीड (६२५-६५६ ई०) का समसामयिक था, अन्तस्साक्ष्य और बहिस्साक्ष्य यही सिद्ध करते हैं। अतः आचार्य सोमानन्द को ई० सन् की नवीं शताब्दी के मध्य हुआ न मानकर सातवीं शताब्दी ई० के प्रथम चरण में हुआ मानना ही तर्क संगत है।

अपेक्षा-गीत

डॉ० सुधा रानी शर्मा

जो मैं प्यार तुम्हारा पाती।
मधुबन की राधा बन जाती॥
भटक रही कब से बादल बन
अम्बर के विस्तृत सूने में
परछांई सी रही सहमती
अपनी विद्युत को छूने में
स्नेह तुम्हारा जो मिल जाता
महाशून्य के शून्य शिविर में
सत्य चिरन्तन मैं पा जाती।
जो मैं प्यार तुम्हारा पाती॥

प्रणय चातकी मैं मतवाली
युग युग की तृष्णा से व्याकुल
मैं लतिका मधु कुसुमों वाली
पतझड़ की पीड़ा से व्याकुल
नेह तुम्हारा जो मिल जाता
जग के सुख में सुरभि बहाकर
दुख में गीत मिलन के गाती।
जो मैं प्यार तुम्हारा पाती॥

मेरे सुख दुख तृषित नयन में
एक बसा सुन्दर बचपन है
विजन विपिन से हृदय-अयन में
एक रचा सुन्दर मन्दिर है
गेह तुम्हारा जो मिल जाता
रजनी की अभिनव माया के
मादक सपनों में अलसाती।
जो मैं प्यार तुम्हारा पाती॥

मेरे अभिशापित अन्तर में
प्राणों की निधियां हैं प्यासी
जीवन मरण परिधि को लखकर
पग पग पर बढ़ रही उदासी
गेय तुम्हारा जो मिल जाता
बंशी के उलझे मृदु स्वर पर
कुंजन बन में रास रचाती।
जो मैं प्यार तुम्हारा पाती॥

सरोज

सरोज की सांस्कृतिक थाती चिरकाल से संजोयी जाती रही है और आज भी भारतीय प्रजातंत्र में सरोज की गरिमा स्वरूप राष्ट्रीय सुमन स्वीकार किया गया है। सरोज की सुघराई, सुवास सहज ही मन को मोह लेती है तभी तो इसे समन्वयात्मकता का प्रतीक माना गया है। समाज को संवारने में सरोज की गरिमा को आंकना आसान नहीं है फिर भी यहां तत्सम्बन्धी कुछ विचारात्मक तथ्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

सरोज शांति का प्रतीक है। शुचिता, सुगन्धि, सौंदर्य व सुकुमारता की उपमा सरोज से दी जाती है। व्यष्टि में समष्टि स्वरूप समन्वय का प्रतीक सरोज विश्ववंद्य है। शतदल होकर ही एकात्मकता का आदर्श प्रस्तुत कर सरोज युग बोधक है अर्थात अनेकों पंखुड़ियां होने पर भी एकता में आबद्ध सरोज सरोवर में विहंसता हुआ एकता का संदेश देता है। इसी प्रकार विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के लोगों की संस्कृतियों का समन्वयात्मक रूप भारतीय संस्कृति है जिसकी उदारता में समस्त विश्व समा जाए। सरोज इसी संस्कृति की दिव्य धरोहर है।

पंकज, कमल, पुण्डरीक, पुष्कर, जलज, नीरज, अंबुज, तोयज आदि इसकी गरिमा स्वरूप नाम हैं। ऋग्वेद में पुंडरीक शब्द का प्रयोग किया गया है जब कि अथर्ववेद में मानव हृदय की तुलना कमल से की गई है। तैत्तिरीय और वाजसनेह संहिता में भी पुष्कर के नाम से इसका उल्लेख है। पंचविंश ब्राह्मण में नील कमल अश्विनी कुमारों को प्रिय बताया गया है जब कि तैत्तिरीय ब्राह्मण में श्वेत कमल की माला का वर्णन है। पुराणों में भी कमल विषयक कथाएं हैं। धन्वन्तरी निघंटु में सात प्रकार के कमलों का उल्लेख है। महाभारत, रामायण, कथासरित्सागर, अमरकोष आदि में पद्म की गरिमा का गान किया गया है।

दर्शन की भाषा में सरोज सृष्टि का आदि तत्व है। मान्यता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में एक स्वर्णमय कमल भगवान विष्णु की नाभि से खिला जिस पर सृष्टिकर्ता ब्रह्मा का प्रादुर्भाव हुआ। लक्ष्मी और सरस्वती को भी कमल बहुत प्रिय है। लक्ष्मी को कमला, पद्माक्षी, पद्मालया आदि नामों से संबोधित किया जाता है वही सरस्वती को :

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमाद्याजगद्व्यापिनी,
वीणापुस्तक धारिणीमभयदां जाड्याधकारापहाम्।
हस्ते स्फाटिकमालिकां विद्धती पद्मासने संस्थिता।
वन्दे तां परमेश्वरी भगवती बुद्धिप्रदा शारदाम्॥

देवताओं की पूजा अर्चना में कमल की महिमा अवर्णनीय है। राम ने देवी की पूजा कमल से की तो विष्णु ने भी शिव की अर्चना कमल से। तुलसी के राम तो "नवकंज लोचन कंजमुख करकंज पदकंजारुणम्" हैं। इसी प्रकार साहित्यकारों ने सौंदर्य और मार्दव के वर्णनार्थ

कमल का उपयोग किया है तो अपनी श्रद्धा व भक्ति का छलकाव भी कमलवत पैरों में अर्पित किया है। महाकवि कालीदास के काव्य में तो कमलों की छवि का उफ़ान सा आ गया है। यथा :

सरसिजमनुविद्धं शैबलेनापि रम्यं,
मलिनमयि हिमांशोलक्ष्म लक्ष्मी तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी,
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ (शाकु. १/२०)

शेवाल से घिरा हुआ भी कमल मनोहर होता है। काला कलंक भी चन्द्रमा की शोभा बढ़ाता है। यह शकुन्तला वल्कल वस्त्रों से भी अति सुन्दर प्रतीत होती है क्योंकि सुन्दर आकृतियों के लिए क्या वस्तु अलंकार नहीं होती। इसी प्रकार सौंदर्य की उपमा में कवि ने कमल की बाढ़ सी ला दी है। संक्षेप में यही कहना ठीक होगा कि सौंदर्य को संवारने के लिए साहित्य में साहित्यकारों ने कमल का अधिकता से उपयोग किया है। कमलवत मुख, कमलवत हाथ, कमलवत पैर का उपयोग तो प्रायः सामान्य रूप से किया जाता है। आजकल तो उद्घाटन में कमलवत हाथों की भरमार है।

भारतीय स्थापत्यकला, शिल्पकला आदि में भी कमल को विशेष प्रतिष्ठा मिली है। ई० पू० दूसरी शताब्दी से ही बौद्ध शिल्प कमल की कमयीयता से अलंकृत है। सांची के द्वारों और छतों पर कमल की छवि देखते ही बनती है। महायान में बोधिसत्व को पद्मपाणि की संज्ञा दी गई है। सारनाथ में बोधिसत्व हाथों में कमल है, वहीं बुद्ध प्रतिमा का प्रभामंडल भी कमलमय है, अजन्ता गुफा के बुद्ध भी कमल पर सुशोभित हैं। नालन्दा की बुद्ध मूर्तियां दोहरे कमल पर आसीन है। खजुराहो की बुद्ध मूर्ति भी कमल पर प्रतिष्ठित है। जावा और सिक्यांग से प्राप्त बुद्ध प्रतिमा भी कमल पर प्रतिष्ठित है जो तेरहवीं शताब्दी की लगती हैं। द्वितीय शताब्दी का भरहुत का शिल्प भी कमलमय है। बोधगया और सांची के स्तूपों की वेदिकाएं व तोरण द्वार भी कमल के नाम से अलंकृत हैं। कहने का तात्पर्य यह कि बौद्ध धर्म में कमल को अत्यधिक महत्व दिया गया है।

इसी प्रकार जैन धर्म में भी कमल को महत्ता दी गई है। यह उनका प्रमुख प्रतीक है जिसे "पालिध्वज" कहा जाता है। जिन सेनाचार्य ने आदिपुराण में उसका विशद विवेचन किया है। मोह त्याग के बाद जब जिन भगवान ने त्रिभुवन-पतित्व को अपनाया तब "पालिध्वज" को भी प्रभुत्व के प्रतीक रूप में धारण किया। जैनधर्म के कई मंदिर व गुफाएं हैं जहां कमल की कला बिखरी हुई है। इसी प्रकार जैन धर्म में भी कमल को महत्ता प्रदान की गई है।

कमल जहां भारतीय राष्ट्रपुष्प रूप में शांति का प्रतीक है वहीं विश्व के अन्य राष्ट्रों द्वारा भी गौरवान्वित है। मिस्र, श्रीलंका, नेपाल, बर्मा, चीन, जापान, तिब्बत, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, यूरोप आदि के विविध भागों में कमल पाया जाता है। अखिल विश्व स्तर पर शांति-समन्वय की दृष्टि से ही भारत ने इसे प्रतीक रूप में माना है। इसी प्रतिष्ठा के पालनार्थ आज भी राष्ट्रीय स्तर पर अग्रगण्य मनीषियों, कलाकारों, समाज सेवियों आदि को पद्मभूषण, पद्मश्री आदि उपाधियों से सम्मानित किया जाता है। कमल भारत के लिए ही नहीं वरन् विश्व के लिए समन्वय का प्रतीक है।

कहानी

डॉ० सुरेश के. अंजुम

पुण्डलिक वरदा हरि विट्ठल

यदि आप काशी के गंगा तट पर प्रातःकाल खड़े हो जाइए तो भक्तगणों के स्नान करने और हर-हर गंगे बम-भोले की मधुर ध्वनि सुखानुभूति प्रदान करती है। इसी प्रकार यदि आप महाराष्ट्र की काशी पंढरपुर की गंगा के किनारे खड़े हो कर गाइए तो यही छटा आपका मन मोह लेगी और इसके साथ ही बम-भोले और 'पुण्डलिक बरदा हरिविट्ठल' सुनाई दिए बगैर नहीं रहेंगे।

बहुत दिनों की बात है। लोहदण्ड नामक शहर में जहनुशर्मा नामक एक द्विज रहता था। उसकी पत्नी का नाम सत्यवती था। उसे एक पुत्र था जिसका नाम पुण्डलिक था। बालक पुण्डलिक इकलौता पुत्र और मां-बाप की आंखों का तारा था। वही एकमात्र कुल-दीपक था जिसे अपने भविष्य की बागडोर माता पिता ने सौंप दी। माता पिता अपने इकलौते पुत्र को इतना अधिक प्यार करते थे कि फलस्वरूप वह पथभ्रष्ट होने लगा। पुण्डलिक जब नालायकी की चरम सीमा को पार कर गया तो माता पिता को चिंता सवार हुई और उन्होंने झटपट जारबाई नामक लड़की से पुण्डलिक का विवाह कर दिया।

विवाह के पश्चात पुण्डलिक जारबाई के साथ आनन्दपूर्वक जीवनयापन करने लगा। जारबाई स्वभावतः बहुत दुष्ट थी उसने अपने पति का मन सास-ससुर के प्रति मलिन कर दिया। इस से पुण्डलिक को बहुत क्षोभ हुआ और उसने रोज का यह रगड़ा मिटाने के लिए अपने मां-बाप को जो काफी बूढ़े हो चुके थे, धक्के मार कर घर से बाहर निकाल दिया। पुण्डलिक के माता पिता बहुतेरे रोए गिड़-गिड़ाए किन्तु उस दुष्ट पुत्र ने उन की एक न सुनी। जाते-जाते भी उन्होंने पुत्र और पुत्रवधू के लिए ईश्वर से मंगलकामनाएं कीं।

पुण्डलिक पत्नी के साथ मजे कर रहा था। उस का घर नहीं था—जुआ, शराब और वैश्याओं का अड्डा था। माता पिता की गाढ़ी कमाई इस पुण्य-कार्य में मित्रगणों के साथ वह खुले हाथों लुटा रहा था।

युग बीत गए। पुण्डलिक, जो संत पुण्डलिक हो गया, की सेवा उसी नदी के किनारे चल रही है और परमेश्वर अभी तक संत पुण्डलिक के सेवाकार्य समाप्त होने की बाट जोह रहा है। आज भी ठीक उसी जगह कमर पर हाथ धरे खड़ा है परमेश्वर।

लक्ष्मी चंचल होती है। मदिरा मदिराक्षी के वश होकर पुण्डलिक का सारा धन बह गया। जब तक धन था पुण्डलिक ने खूब ऐश-आराम किया। उसके मित्र भ्रमरों की तरह उसके आस-पास मंडराया करते थे। जैसे-जैसे धन समाप्त होने लगा मित्र लोग पुण्डलिक से आंखें चुराने लगे। कुछ दिनों बाद पुण्डलिक कंगाल हो गया। कोई उसकी सहायता करने के लिए तैयार न था। मित्रगण तो पहले ही साथ छोड़ चुके थे। कर्ज ले कर वह और भी बोझ से दबा जा रहा था। वह बहुत दुःखी और निराश हुआ। पत्नी को साथ ले कर वह काशी की यात्रा के लिए निकल पड़ा। सुख में जिसे भगवान नाम का पता न था वही अब दुःखों में ईश्वर को याद करने लगा।

पुण्डलिक और उसकी पत्नी जारबाई की यात्रा भी बड़े ही विचित्र ढंग की थी। पुण्डलिक ने अपनी पत्नी को कंधे पर बैठाया और चल पड़ा। जब तक वह थक न जाता वह चलता ही रहता। विश्राम के लिए वह उपयुक्त स्थान देख कर रुकता और पत्नी को कन्धे से उतारता था।

एक दिन तीस-चालीस मील की यात्रा करने के उपरांत पुण्डलिक ने पत्नी से कहा, "कन्धे बहुत दुख रहे हैं। यहां थोड़ी सी छांह है। ठण्डा पानी बह रहा है। थोड़ा सा विश्राम कर तब आगे चलेंगे।"

उसकी पत्नी जारबाई ने कहा, "अगर इस तरह रुकते-रुकते काशी की यात्रा करोगे तो हो गया कल्याण। नहीं हो सकती काशी की यात्रा।"

"किन्तु मेरे पैरों में इतना दर्द हो रहा है कि मुझ से चला नहीं जाता।" पुण्डलिक ने याचना भरे स्वर में कहा।

वे दोनों विश्राम करने के लिए रुके। खाना खा चुकने के बाद दोनों सो गये। जारबाई तो गाढ़ी नींद में खो गई, किन्तु पुण्डलिक की आंखों में नींद न थी। तरह-तरह की कल्पनाओं विचारों से उसका मस्तिष्क गुंथा हुआ था। समीप ही नदी बह रही थी। नदी का कलकल निनाद स्पष्ट सुनाई दे रहा था। "गंगा नदी पापियों को तारती है" वह सोच रहा था। तभी नदी की बड़ी सी लहर उसके पांव के पास आकर लौट गई और उसके साथ ही एक आवाज़ पुण्डलिक के कानों में आई, "बाप रे, अभी कितना पाप हो जाता। पापी पुण्डलिक को यदि मैंने स्पर्श किया होता तो मैं भी पापी हो जाती।"

पुण्डलिक को एक करारा आघात हुआ। "क्या मैं इतना पतित हूँ कि गंगा भी मुझे स्पर्श करना नहीं चाहती?" चलचित्र की भांति बीती हुई घटनाएं आंखों के सामने से हो कर गुज़रने लगीं। "तो अब मुझे गंगा जी कैसे पवित्र करेंगी?" वह सोचने लगा।

"अवश्य पाप नाश होगा वत्स! पश्चाताप से पाप नाश होता है पुण्डलिक। यही पहला सोपान है तरने का।"

पुण्डलिक ने देखा सामने खड़े ज्योति पुरुष कुक्कुट महाराज थे। जटा धारण किए और गेरुए रंग के वस्त्रों से सुशोभित वे मार्ग दिखा रहे थे। तभी गंगा की दूसरी लहर आई। महाराज और पुण्डलिक दोनों के चरण स्पर्श कर वापस लौट गई।

"महाराज मेरा जीवन धन्य हो गया आपकी कृपा से। आपके तेज के कारण ही गंगा ने मुझे स्पर्श किया है।" पुण्डलिक कहने लगा।

"नहीं वत्स यह मेरा तेज नहीं तुम्हारे पश्चाताप का फल है। उठो, धर्म-मार्ग, सेवा-मार्ग और भक्ति-मार्ग की ओर बढ़ो। तुम्हारा मार्ग खुला है।"

"कैसे महाराज?"

"सब से प्रेम करो। सेवा करो। यदि तुम ने

माता पिता की सेवा की तो ईश्वर भी तुम्हें गले लगाएगा ।"

"महाराज ! मैंने तो माता-पिता को कभी का घर से बाहर निकाल दिया है । मेरा भाग्य कहां कि अब मुझे वे मिलेंगे ।"

"ठीक है, किन्तु तुम यात्रा करो कहीं न कहीं तुम्हें वे अवश्य मिलेंगे ।"

"जो आज्ञा महाराज !" पुण्डलिक ने कुक्कुट महाराज के चरण छू लिये ।

कुक्कुट महाराज चले गए तो पुण्डलिक ने खर्राटे भर रही पत्नी को बड़े ज़ोर से झकझोरा ।

"आय, हाय, क्या बला आ गई ? क्यों तंग कर रहे हो ? सोने क्यों नहीं देते ?" जारबाई ने झल्ला कर कहा ।

"अरे, उठो भी । इस प्रकार सारा जीवन सोते हुए बिताओगी तो कैसे उद्धार होगा ?"

आश्चर्यचकित हो वह पुण्डलिक के मुंह की ओर देखने लगी । उस ने आज तक ऐसी बातें अपने पति के मुंह से नहीं सुनी थीं ।

"हां ! वह पुण्डलिक मर चुका है । एक नए पुण्डलिक का जन्म हुआ है । अब जल्दी करो मुझे माता पिता को ढूंढना है ।"

"किन्तु तुम ने तो मां बाप को पहले ही घर से बाहर भगा दिया है ।"

"हां मुझे उसी का प्रायश्चित्त करना है ।"

"चलो चलो, बैठाओ मुझे कन्धे पर ।"

"नहीं", पुण्डलिक ने कहा, "पत्नी को पति की सेवा करनी चाहिए यही पत्नीधर्म है, न कि पति पत्नी की सेवा करे ।"

"अच्छा चलो ।" गठरी उठा कर वह पति के पीछे चलने लगी ।

वे जंगल में से हो कर गुज़र रहे थे कि पुण्डलिक को लगा जैसे सांप उसके पैरों पर से हो कर गुज़र गया है । वह बहुत बुरी तरह डर कर चीख उठा, 'मां'..... और गिर कर बेहोश हो गया ।

दूसरे दिन जब सुबह उसे होश आया तो उसने आंखें खोलीं, "मैं कहा हूं ?"

"मां की गोद मे" उसकी पत्नी जारबाई ने उत्तर दिया । "क्या माता-पिता आ गए ? कहां हैं वे ?"

"हां बेटा"

वह उठ बैठा । उसने माता-पिता से क्षमा मांगी । "बेटा अब हमें छोड़कर न जाना ।" मां ने कहा । "नहीं मां । भगवान भी कहेगा तो नहीं जाऊंगा तुम्हें छोड़ कर ।"

पुण्डलिक ने माता-पिता की सेवा करनी आरम्भ कर दी । उसकी पत्नी जारबाई भी उसकी सहायता करती थी । पुण्डलिक माता-पिता के हाथ पांव दबाता । भिक्षा मांग कर लाता । उन्हें नहला-धुला देता । कभी पिता को और कभी मां को कन्धे पर बिठाकर यात्रा करता । रात भर जहां जगह मिलती वे विश्राम करते और सूर्योदय के समय पुनः यात्रा आरम्भ कर देते ।

अन्त में वे लोग काशी पहुंचे । उन्होंने विश्वनाथ जी के दर्शन किए । पुण्डलिक की भक्ति चरम सीमा को लांघ चुकी थी । उसकी आंखों से अश्रु बहने लगे । वह नतमस्तक होकर विश्वनाथ जी की मूर्ति के आगे कहने लगा, "भगवन ! तुम्हारे चरणों में ही मुझे मुक्ति मिले । काशी में जो मरता है जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होता है । हे ईश्वर ! मैं इन्हीं चरणों में लुप्त हो जाना चाहता हूं ।"

"वत्स् पुण्डलिक मैं तुम्हारी पितृभक्ति से बहुत प्रसन्न हूं । तुम जहां भी रहोगे वहीं काशी हो जाएगी । तुम जाओ और अपने गांव लोहदण्ड में भागीरथी नदी के तट पर माता-पिता की सेवा करो ।

मैं वहीं तुम से भेंट करूंगा।"

वे लोग काशी में कुछ दिन रुके और उसके बाद गंतव्यस्थान अपने ग्राम लौहदण्ड में भागीरथी नदी के किनारे एक ऊंचे स्थान पर आ पहुंचे। पुण्डलिक ने वहां सपत्नीक अपने माता-पिता की सेवा करनी आरम्भ कर दी।

बरसात के दिन थे। पुण्डलिक और उसकी पत्नी जारबाई दोनों माता-पिता के पांव दबा रहे थे। मूसलाधार वृष्टि के कारण सर्वत्र जल ही जल दिखलाई दे रहा था। धीरे धीरे पानी उस ऊंची जगह की ओर बढ़ने लगा जहां पुण्डलिक बैठा माता-पिता के पांव दबा रहा था। जब पानी इतना चढ़ आया कि लगा ये लोग अब डूब जाएंगे तो जारबाई के प्राण सूख गए, उसने डर के मारे आंखें बंद कर लीं। पुण्डलिक का ध्यान माता-पिता की ओर था जो संतोष से आंखें मूंद सो रहे थे। उसे पानी के चढ़ आने और जारबाई के भयभीत हो जाने का बिल्कुल ही पता न था।

पानी बढ़ा..... और बढ़ा .....और आश्चर्य! नदी ने पुण्डलिक के पैरों को केवल स्पर्श किया और धीरे धीरे नदी का जल उतरने लगा।

"वत्स! मैं आ गया हूँ।" आवाज आई, पुण्डलिक ने देखा साक्षात ईश्वर खड़ा है।

पुण्डलिक को इतनी खुशी हुई कि उसकी आंखों से आंसू बहने लगे, किन्तु इस डर से कि कहीं माता-पिता की सेवा में रुकावट न आ जाए और वे जाग न जाएं, उसने भगवान को प्रणाम नहीं किया।

"आओ वत्स, मेरे दर्शन कर लो" भगवान ने कहा।

"ठीक है भगवन, किन्तु मैं इस समय सेवा-कार्य में जुटा हूँ। मैं यदि उधर तुम्हारे दर्शन करने आया तो मेरी सब सेवा व्यर्थ हो जाएगी, मेरी सेवा टूट जाएगी। माता-पिता को कष्ट होगा।" पुण्डलिक ने निवेदन किया।

"तो उस से क्या हुआ वत्स्। जिसका ऋषि-महर्षियों को दर्शन दुर्लभ है वही आज साक्षात तुम्हारे पास आया है देर न करो। थोड़ी देर रोक दो अपनी सेवा, हर्ज क्या है?" भगवान ने कहा!

पुण्डलिक कहता "मेरी सेवा में बाधा उपस्थित होगी" और परमेश्वर कहता "पहले मेरे दर्शन कर लो फिर सेवा कार्य में जुटना।"

पुण्डलिक बड़े ही पसोपेश में पड़ गया कि सेवा कर रहा हूँ तो ईश्वर दर्शन के लिए हठ कर रहा है। दर्शन करने जाऊं तो माता-पिता को कष्ट होगा।' उसने निर्णय किया कि चाहे कुछ भी हो जाए वह अपने स्थान से हिलेगा नहीं। भगवान को थोड़ा खिझाने के लिए पुण्डलिक ने अपना निर्णय कह सुनाया। उसने यह पहले पहल ही देखा था ईश्वर हठ। उसने कहा, "हटो भगवन हवा आने दो। मुझे तंग मत करो, मेरी परीक्षा न लो। मैं किसी भी तरह सेवा-कार्य को क्षणभर भी रोक नहीं सकता। मुझे माफ़ करो। अगर तुम्हें गरज है तो मेरी सेवा पूरी होने तक इस ईंट पर खड़े मेरी प्रतीक्षा करते रहो।" यह कहते हुए उसने एक हाथ से पास पड़ी हुई एक ईंट भगवान की ओर फैंक दी। "धन्य-धन्य, वत्स्!" ईश्वर कमर पर हाथ रखे ईंट पर खड़ा हो गया, "चलती रहने दो तुम्हारी सेवा। मैं युग-युगों तक प्रतीक्षा करता रहूंगा।"

युग बीत गए। पुण्डलिक, जो सन्त पुण्डलिक हो गया, की सेवा उसी नदी के किनारे चल रही है और परमेश्वर सन्त पुण्डलिक के सेवा-कार्य समाप्त होने की बाट जोह रहा है। अभी तक और आज भी ठीक उसी जगह कमर पर हाथ धरे परमेश्वर खड़ा है।

किसी युग की कहानी एक भीनी मधुर स्मृति में सिमटी हुई सन्त पुण्डलिक के नाम को तरोताजा करती है जब भक्तगण गंगा में स्नान करते हुए जोरों से आह्वान करते हैं:

"पुण्डलिक वरदा हरि विठ्ठल"

विनय

इंदु बोहरा

विनय लौटती
प्रतिध्वनि बनकर
शाश्वत नभ से
क्यों ऐसा है ?
क्षुद्र कामना मेरी
माना
दृष्टि तुम्हारी तो विराट है
व्यथित नयन हैं
छवि बांकी पल भर निहारने
आश-निराशा
भूले मन
हैं प्राण तड़पते
क्षमा करो प्रभु !
मैं मूरख हूं
तुम जगव्यापी
डोल रहे हो
बोल रहे हो
कण कण में अविराम
चिरंतन
मन अंतर को
दिव्य स्पर्श से
आत्मसात कर
हे त्रिभुवनपति !
गूंजो तन मंदिर में मेरे।

विडम्बना

नलिनी कौशिक

जीवन दीप
अनवरत जलता है
चेतन को छलता है
अंतस की ज्वाला में
पारस हो सकता मन
प्रलोभनों का निष्कासन
सम्भव है
विडम्बना किंतु यह
विकारों का अंत
मृत्यु-पर्यन्त।



प्राचीन भारत में दीक्षान्त-समारोह

वैदिक और वैदिकोत्तर काल में दीक्षान्त-समारोह का आयोजन 'समावर्त्तन' के समय होता था जो विद्यार्थी की शिक्षा-समाप्ति पर होने वाला विशिष्ट संस्कार था। अध्ययन की अवधि क्रमशः ४८, ३६ २४ तथा १२ वर्ष थी। इसके बाद सामान्य रूप से उसे समावर्त्तन की आज्ञा मिल जाती थी। उस समय स्नातकों की तीन श्रेणियां थीं—विद्यास्नातक, व्रतस्नातक तथा विद्याव्रत स्नातक। इनमें जो छात्र विद्यार्जन करने पर भी ब्रह्मचर्य व्रत समाप्त न कर पाते थे, वे 'विद्यास्नातक', व्रत समाप्त कर लेने पर भी ज्ञान की दृष्टि से अपूर्ण 'व्रत स्नातक' तथा विद्यार्जन और व्रतनिर्वाह-दोनों में पूर्णता प्राप्त करने वाले विद्यार्थी 'विद्याव्रत स्नातक' कहलाते थे। इन्हें निश्चय ही समाज में अत्यधिक आदर का स्थान मिला हुआ था।

दीक्षान्त-समारोह सूर्य के उत्तरायण होने पर रोहिणी, मृगशिरा, तिष्य, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा तथा विशाखा नक्षत्रों में से किसी में भी सम्पन्न हो सकता था। गृह्यसूत्र-साहित्य से स्पष्ट होता है कि समारोह के दिन उसमें भाग लेने वाले विद्यार्थी को प्रातः सूर्योदय से पूर्व ही गोशाला या अन्य किसी स्थान में छिप कर बैठना पड़ता था। मध्याह्न में जब संस्कार प्रारम्भ होता था तब कुछ प्रारम्भिक हवन-क्रियायें सम्पन्न कर वह आठ घड़े जल से स्नान करता था। स्नान करते समय पढ़े जाने वाले मंत्रों का भाव इस प्रकार से है :

हे अश्विनी कुमारो ! आप ने जिस जल से देवताओं की लक्ष्मी सम्पन्न की है, जिस से उपमन्यु के नेत्रों का अभिसिंचन कर आप यशस्वी हुए हैं उसी जल में स्नान करने से मुझे भी यशोप्राप्ति हो।

'हे जलस्थ अग्निदेव ! मैं इस जल से मंगल की उपलब्धि कर रहा हूं। मानसिक उत्साह नष्ट करने वाले, अप्रतीकार्य तथा विविध रोगों से पीड़ित कर इन्द्रिय घात करने वाले आठ दोषों का परित्याग कर अब मैं तेज धारण कर रहा हूं।'

स्नान करने के बाद वह उपनयन के समय पहनी गई मेखला तथा लिये गये दंड को अग्नि में डाल कर अन्य कोई वस्त्र पहन लेता था और सूर्य की

●

ओम प्रकाश पाण्डेय

●

ओर देखते हुए निम्न आशय का मंत्र पढ़ता था—'हे आदित्य, तुम उदय होते हुए अत्यन्त तेजोमय

हो, दस गायें प्रदान करने वाले हो। मुझ में भी दस गायें देने की क्षमता उत्पन्न करो। हे सर्वज्ञ सूर्य! मुझे भी सर्वज्ञ बनाओ।' इसके अनन्तर वह थोड़ा सा दही अथवा तिल खा कर जटा, रोम तथा नाखुन कटवाकर गूलर की दातुन करते हुए मन्त्र पढ़ता था— 'हे दन्तगण! तुम अन्न भक्षण के लिए, आत्मशुद्धार्थ एक पंक्ति में निविष्ट हो जाओ। दातुन के रूप में आया यह राजा सोम मेरे मुख का यश और ऐश्वर्य से परिमार्जन करेगा।' श्रद्धा मेधा तथा काम के प्रतीकपुष्प-अपामार्ग, सदापुष्पी, कूट, जटामांसी, हल्दी, वच शिलाजीत, लाल चन्दन, कपूर तथा भद्रमुस्ता आदि औषधियों से बने उबटन से शरीर का मल छुड़ाकर वह फिर स्नान करता था। तदुपरान्त 'हे अनुलेपनाभिमानी देव! आप मेरे प्राण और अपान तथा नेत्रादि इन्द्रियों को प्रसन्न करें' मन्त्र पढ़ता हुआ शरीर पर चन्दन इत्यादि का लेप करता था। नवीन वस्त्र पहनने के बाद स्नातक आचार्य द्वारा दिये गये पुष्प लेकर उन्हें शिखा आदि के रूप में अवशिष्ट केशों में बांधते हुए निम्नलिखित मन्त्र पढ़ता था :

"या आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै
मेधायै कामायेन्द्रियाय।
ता अहं प्रतिगृह्णामि यशसा च भगने च।"

—जिन पुष्पों को प्रजापति ने श्रद्धा, मेधा तथा काम के लिये ग्रहण किया था, उन्हें मैं भी उपर्युक्त प्रयोजनों की पूर्ति तथा यश और ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए ग्रहण कर रहा हूँ।

तदुपरान्त स्नातक सिर पर पगड़ी बांधकर कानों में कुण्डल पहनता था। नेत्रों में अंजन लगाकर दर्पण में अपनी मुखाकृति देखता था। पुनः 'हे छत्र! तुमने बृहस्पति के सूर्य ताप इत्यादि का निवारण किया था, अतः मेरी भी निषिद्ध आचरणों से रक्षा करो। यशस्वी तथा प्रतापी बनाओ' मन्त्र पढ़ता हुआ छत्र (छाता) ग्रहण करता था। तत्पश्चात् पैरों में जूता पहन कर बांस का दण्ड हाथ में लेता था। इस दण्ड ग्रहण का प्रयोजन आगे दीक्षान्त भाषण के समय दिये गये निम्न निर्देश से स्पष्ट होता है :

'दृढ़व्रतो वधत्रः स्यात् सर्वत आत्मानं
गोपायेत् सर्वेषां मित्रमिव।'

—दृढ़व्रत वाला होकर सब के मित्र की भांति रहे, किन्तु वध करने वाले से सब प्रकार से आत्मरक्षा करे।

दीक्षान्त भाषण

'तैत्तिरीय उपनिषद्' की शिक्षावल्ली के ११वें अनुवाक् में 'वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति।' सत्यं वद। धर्मं चर।

वेदाध्ययन कराने के अनन्तर आचार्य शिष्य को यह उपदेश देता है—सत्य बोल। धर्म का आचरण कर।

विद्यार्जन करने के साथ साथ देवकार्य और पितृ कार्यों में प्रमाद नहीं करना चाहिये—देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।

जो अनिन्द्य कर्म हैं उन्हीं का सेवन करना चाहिये दूसरों का नहीं। गुरूजनों के जो शुभ आचरण हैं शिष्य को उन्हीं अच्छे आचरणों का पालन करना चाहिये।

'यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि।
नो इतराणि।
यान्यस्माकं सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि।
नो इतराणि।'

आदि के रूप में स्नातक को दिये गए उपदेशों का

पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त स्नातक के लिए विहित अन्य बहुत से नियमों का भी निरूपण उपलब्ध होता है।

दीक्षान्त भाषण करता हुआ आचार्य कहता था—
''महद् वै भूतं स्नातको भवतीति विज्ञायते।
अत ऊर्ध्वं वृद्धशीली स्मादिति समस्तोद्देशः॥''

निश्चित रूप से स्नातक महान व्यक्ति है। अब से उसे प्रतिष्ठित आचरण ही करना चाहिए। इसके बाद अनेक विधि व निषेधों का वह उल्लेख करता था, जिनके अनुसार स्नातक के लिए नृत्य, गीत, वाद्य का पूर्ण रूप से निषेध था।

अपनी ओर से वह इन्हें न तो करवा सकता था और न किसी के करवाने पर उनमें सम्मिलित ही हो सकता था।

रात्रि में दूसरे गांव जाना, कूप इत्यादि में अपना प्रतिबिम्ब देखना, सन्धि-अर्पण करना अर्थात जहां भाई-भाई, पिता-पुत्र अथवा पति-पत्नी आपस में वार्तालाप कर रहे हों, ऐसे स्थान में जाना, नग्न स्नान, विषम अर्थात ऊंची नीची भूमि लांघना तथा अश्लील वचन बोलना उसके लिए पूर्ण रूप से वर्जित था।

पानी बरसते समय उससे बिना छाता लगाये चलने के लिए कहा जाता था। तत्कालीन विश्वास के अनुसार वृष्टिजन्य जल से पाप धुल जाते हैं। अजातलोम्नी, (जिसके भ्रू आदि स्थानों में केश न हों) तथा पुरुष चिन्हों श्मश्रु आदि से युक्त स्त्री का उपहास करना मना था।

उस से 'गर्भिणी' को 'विजन्या' अर्थात 'विशेष प्रसवा' तथा कुल रहित व्यक्ति को 'निर्वंशी' 'नकुल' आदि न कह कर 'सकुल' कहने की अपेक्षा की जाती थी।

वह 'कपाल' को 'भगाल' तथा 'इन्द्रधनुष' को 'मणि धनुष' कहता था।

बछड़े को दूध पिलाती हुई गाय की सूचना उसके स्वामी को देना निषिद्ध था। तृणादि से अनाच्छादित उर्वर भूमि पर मूत्र पुरीष का उत्सर्ग तथा बहुत तड़क-भड़क के वस्त्र पहनने का उसके लिए निषेध था।

दीक्षान्त भाषण के उपरान्त वह अपने आचार्य तथा शिष्य परिषद् के मध्य जाकर कहता था—'मैं आपके लिए आंख की पुतली की तरह प्रिय होऊं।' फिर अपनी ज्ञानेन्द्रियों का स्पर्श करता था। तदुपरान्त आचार्य अर्घ प्रदान कर उसका सम्मान करता था।

संध्या समय हाथी, घोड़े या रथ पर सवार होकर वह एक ऐसे विशाल जनसमूह के मध्य जाता था, जहां स्नातकों को सम्मानित करने का विशिष्ट आयोजन रहता था। इस प्रकार से अपने विशिष्ट ज्ञान, प्रतिम उत्साह तथा असीम प्रेरणाप्रद उपदेशों से अनुप्राणित होकर स्नातक कर्म क्षेत्र में उतरता था।

आज के विश्वविद्यालयीय आडम्बरपूर्ण, अपार व्ययसाध्य, संस्कारविहीन, पाश्चात्य अनुकरण मात्र दीक्षान्त-समारोहों के संदर्भ में भारत के प्राचीन विद्यापीठों की उपर्युक्त दीक्षान्त-पद्धति का यह आदर्श अत्यधिक श्रेयस्कर सिद्ध होगा, यह कहने के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं।



बालोपयोगी गीत

सुशीला देवी बैस

मेरा भारत देश महान

आओ बच्चो, तुम्हें सुनाएं गौरव गाथा भारत देश महान की।
पूर्वजों के गौरव के अभिमान की।
प्रथम नमन हम करें गजानन और शारदा माता को।
जिनके पावन आशीषों से जन्म सफल हो जाता हो।
बीणावादिणी, विभावारिधि, ऐसा मुझको दे वरदान।
जीवन की इस मधुबेला में कर जाऊं कुछ नाम।
पहले सतयुग से हम ले लें रामराज्य का वह आदर्श।
एक घाट पर सिंह-बकरी पानी पीते थे, करें न आपस में संघर्ष।
ऊंच-नीच और छुआ-छूत का प्रभु ने भेद मिटाया।
केवट और निषादराज को प्रभु ने गले लगाया।
जूठे फल शबरी के खाकर हरिजन का मान बढ़ाया।
त्रेता युग में हुए यहां शिवि, दधीचि और हरिश्चन्द्र से दानी।
दिया किसी ने अपना सर्वस्व और किसी ने काया लासानी।
द्वापर में चलें अब, द्वारका देखें झांकी, गोकुल वृन्दावन की।
गूंज रही है यमुना तट पर, मुरली मनमोहन की।
आया प्रथम चरण कलियुग का, मानवता का हुआ पतन।
धर्म-कर्म सब भूले मानव, सुनकर भर आए नयन।
ऐसे समय सूर और तुलसी, मीरा ने बहाई रसधारा।
अपनी सुन्दर रचनाओं से दिया हमको राम नाम प्यारा।
युग बीते, सदियां बीतीं, छाया मुगलों का आतंक।
वीर शिवा और छत्रसाल ने कर दिया उनका हुलिया तंग।
अरावली के उच्च शृंग, हल्दीघाटी और चित्तौड़।
याद दिलाते उन वीरों की, निज स्वतन्त्रता हेतु
जिन्होंने लिया जगत से नाता तोड़।

खत्म हुआ मुगलों का शासन, रखा पांव फिरंगी ने।
हमें याद दिलाने बलिदानी, तब जन्म लिया रणचण्डी ने।
गदर हुआ सन् सत्तावन का, बदला भारत का इतिहास।
हिन्दू-मुसलमान एक होकर, टूट पड़े अंग्रेज़ों पर, बन्द कर दी उनकी श्वास।
फिर भी हारे देशभक्त, यूनियन जैक रहा लहराता।
दुश्मन रहा यहां, फिर भी था घबराता।
आया १९४२, अहिंसक क्रांति उठी ज़ोरों की।
बन्धन शृंखलाएं तोड़ दीं इसने गोरों की।
दुश्मन इतना हुआ कमज़ोर।
पांच चार साल रहकर भागा फिर वह ताबड़तोड़।
१५ अगस्त १९४७—आज़ादी का वह दिन।
जिसकी प्रतीक्षा में रहते थे हम प्रतिदिन।
वह आया
सन्देश नया लाया
हम हुए स्वतन्त्र
मिला हमें अभूतपूर्व
प्रजातन्त्र- गणतन्त्र

लेखकों से

'धर्ममार्ग' धर्म, दर्शन, आध्यात्मिकता से संबंधित किसी भी विषय पर कहानी, लेख, कविता संस्मरण आदि आमंत्रित करता है। **काश्मीर संबंधी रचनाओं को विशेष महत्व दिया जाएगा।**

रचनाएं जितनी मौलिक, अप्रकाशित, अप्रसारित और हमारे उद्देश्यानुरूप हों उतनी अधिक प्राथमिकता उन्हें दी जाती है।

स्वीकृति की दशा में सूचना तुरन्त भेज दी जाती है। **अस्वीकृति की सूचना नहीं दी जाती।**

अस्वीकृत रचनाएं तभी लौटाई जाती हैं यदि उनके साथ डाक-टिकट लगा और पता लिखा लिफ़ाफ़ा भेजा गया हो।

रचनाएं जितनी स्पष्ट लिखी या टाइप होंगी उन्हें प्रकाशित करने में हमें उतनी ही सुविधा होगी।

रचनाओं के अत्यधिक संख्या में प्राप्त होने के कारण प्रकाशन में विलंब होना स्वाभाविक है। कृपया इस संबंध में बार-बार पत्र व्यवहार न करें। हम अनुगृहीत होंगे।

—सम्पादक

नचिकेता

लेखक : डॉ. स्वर्ण किरण

प्रकाशक : मिथिलेश प्रकाशन, आरा

पृष्ठ संख्या : ६८

मूल्य : दो रुपये पच्चीस पैसे

उत्क्रांतिवाद के उद्गाता लेखक स्वर्णकिरण समर्थ समीक्षक और सुकवि हैं। उन्होंने कविता के क्षेत्र में "नई कविता" के ढंग की रचनाएं अधिक लिखी हैं, जो कई प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में तथा स्वतन्त्र पुस्तिकाओं के रूप में छप चुकी हैं। प्रस्तुत कृति "नचिकेता" कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से पद्धति-काव्य की शृंखला में जुड़ी हुई है। सर्ग-बद्धता, सर्गांत में छंद-परिवर्त्तन या कथा-कलन का पौराणिक (वैदिक-औपनिषदिक !) आधार उपर्युक्त तथ्य की संपुष्टि करता है। लेकिन कथ्य की दृष्टि से इस कृति की यह विशेषता है कि इस में नचिकेता को आधुनिक जीवन-संदर्भ में उपस्थित किया गया है तथा उसे इन दिनों की टकसाली अनास्था का विलोम बना दिया है। सच पूछिए तो नचिकेता जिज्ञासा का अनादि पर्याय है और आर्य मनीषा की औपनिषदिक मनोभूमि का आद्य बिंब है।

आशा है, स्वर्णकिरण की यह कृति अनास्था और कुंठा की रपटीली सड़क पर दौड़ते हुए मनुष्य की थकी जिज्ञासा को नई अंतःशक्ति देगी तथा उसे किसी ऊर्ध्व क्षितिज की ओर प्रेरित करेगी।

—डॉ० कुमार विमल

दर्शनीय राजस्थान

हरिशंकर शर्मा

देवताओं की धरती : माउंट आबू

राजस्थान की गौरवशाली गोद में स्थित 'आबू पहाड़' एक दर्शनीय स्थल है। राजस्थान जैसे गर्म एवं शुष्क प्रदेश में इस पर्वत की सुषमा दर्शनीय है। जैसे ही सैलानी आबूरोड स्टेशन (वेस्टर्न रेलवे) से बस द्वारा माउंट आबू की ओर चलता है, उसके हृदय में रह रहकर पर्वतीय सौन्दर्य की नई किरणें फूट पड़ती हैं। रास्ते में गगनचुम्बी चोटियां, काली दैत्याकार चट्टानें व अनेक प्रकार के वृक्ष और उन पर आच्छादित लतायें सैलानियों को बिना लुभाये नहीं मानते। मार्ग घुमावदार होने से बस सूनी सड़कों पर नागिन की भांति चली जाती है और लगभग १८ मील लम्बा मार्ग १ घण्टे में तय हो जाता है, जिसमें सैलानी हृदय को भुला देने वाले मनोहारी दृश्य, कल-कल करते हुए तीव्र वेग में प्रवाहित झरने और काले-भूरे बादल अवर्णनीय हैं। रमणीय पर्वतमाला के बीच से होकर जाने वाली सर्पाकार सड़क के एक ओर गहरी नील वर्ण घाटियां दिखाई देती हैं तो दूसरी ओर वन वैभव से परिपूर्ण ऊंची चट्टानों की कतारें नजर आती हैं।

माउंट आबू राजस्थान का स्वर्ग कहलाता है। यह स्थान पश्चिमी रेलवे के आबू रोड स्टेशन से लगभग १८ मील पर है। यह अहमदाबाद से ११५ मील उत्तर में व जयपुर से २७५ मील दक्षिण में तथा बम्बई से ४४२ मील उत्तर में है। यह स्थान समुद्री सतह से लगभग ४००० फीट की ऊंचाई पर है और इसकी लम्बाई लगभग १२ मील व चौड़ाई लगभग ३ मील तक है। इसकी सब से ऊंची चोटी गुरुशिखर तो लगभग ६००० फीट की ऊंचाई पर है जो हिमालय तथा नीलगिरि के बीच का उच्चतम शिखर है। यहां का वार्षिक साधारण उष्ण तापमान ७०° होता है जो अप्रैल में बढ़कर ९०° हो जाता है। साल भर में लगभग ७० इंच वर्षा होती है। प्रतिवर्ष १५ मार्च से १५ जून तक तथा अक्टूबर-नवम्बर के महीनों में आबू पहाड़ पर जाने के लिए अनुकूल मौसम रहता है। उस समय मौसम बड़ा मनोहर रहता है।

उत्तर प्रदेश में जो स्थान नैनीताल मंसूरी का है वही राजस्थान के इस सुरम्य स्थल का है। इसी कारण यह राजस्थान की ग्रीष्मकालीन राजधानी भी है। यहां पर वर्ष भर पर्यटकों, सैलानियों व तीर्थ यात्रियों की भीड़ सी लगी रहती है और प्रतिवर्ष लगभग ७० हजार से भी अधिक सैलानी पर्यटन करने आते हैं जिनमें मुख्यत: बम्बई, अहमदाबाद, पूना, जयपुर व दिल्ली प्रमुख हैं।

प्राचीन मान्यताओं के आधार पर आबू देवताओं की धरती है, जिस से इसे पुण्य एवं पवित्र धाम भी माना जाता है। आबू की कुलदेवी मानी जाने वाली अर्बुदा देवी का मन्दिर सिविल स्टेशन से उत्तर

दिशा में स्थित है। पहाड़ी में खोदकर बनाये गए इस सुन्दर छोटे मन्दिर में पहुंचने के लिए लगभग ४०० सीढ़ियां चढ़नी पड़ती हैं। यहां पर जैन शिल्प कला के उत्कृष्ट व आकर्षक नमूने हमें देलवाड़ा के मन्दिरों में मिलते हैं। देलवाड़ा के मन्दिरों की शोभा अद्वितीय है। यहां आदिदेव ब्रह्मा व आदिदेवी सरस्वती व उनके विजयीवत्स १०८ की अलग २ जड़ यादगारें (कोठरियां) विद्यमान हैं, जिन्हें सन् १०३२ में विमलशाह द्वारा बनवाया गया था। इसके आस-पास कुछ मन्दिर भी हैं। यह मन्दिर सफेद संगमरमर के बनाये गये हैं और इनकी नक्काशी व निर्माण कला प्राचीन भारत के गौरवशाली अतीत का सजीव चित्रण प्रस्तुत करती है। जैनियों का यह सब से बड़ा तीर्थ स्थान है। देलवाड़ा मन्दिर के आस-पास कुछ धर्मशालायें भी हैं जहां केवल जैनी ही निवास कर सकते हैं। इसके पास ही कुंवारी कन्या व अधर-कन्या के मन्दिर हैं। इनकी शूर-वीरता और बलिदान की अमर कहानियां आज भी राजस्थान के घर-घर में सुनाई जाती हैं। मन्दिर देखकर ऐसा लगता है मानो उनकी यह यादगारें आज भी पथप्रदर्शन के लिए अग्रसित कर रही हों।

देलवाड़ा के मन्दिरों के बाद अचलेश्वर मन्दिर विशेष दर्शनीय स्थल है। यह आबू से लगभग ५ मील है। यहां आदिदेव व आदिदेवी के मन्दिर हैं। यहां की उत्कृष्ट प्राचीन कला देखकर एक क्षण को अपने को भूल जाना पड़ता है और लगता है जैसे स्वर्ग की दुनिया में विचरण हो रहा हो। अचलेश्वर मन्दिर के पास मन्दाकिनी कुण्ड एक बड़ा तालाब है जिसका जल भागीरथी के गंगाजल के सदृश पवित्र माना जाता है। तालाब के किनारे आदिपाल परमार की मशहूर मूर्ति खड़ी है और ऊपर की ओर अचलगढ़ का प्राचीन किला है जो अतीत की गौरवशाली स्मृतियों का प्रतीक है।

आबू की अद्वितीय शोभा नवकी लेक है जिसने यहां की सुन्दरता में चार चांद लगा दिये हैं। प्रचलित मान्यताओं के आधार पर यह तालाब देवताओं ने नाखूनों से खोदा था। ऊंची ऊंची पहाड़ियों व हरे भरे पेड़ों की कतारों के साथ साथ रंग बिरंगे फूलों की लताओं से घिरे इस तालाब की शोभा देखते ही बनती है। अब इसे 'गांधी तालाब' कहा जाने लगा है। इसके तट पर रघुनाथ जी व हनुमान जी के सुन्दर मन्दिर हैं जिनके पास कुछ धर्मशालायें व गुफ़ायें भी हैं। तालाब के चारों ओर सैलानियों के घूमने के लिए एक सुन्दर सा मार्ग है जिस पर चलकर गर्म प्रदेशों की लू और कड़कड़ाती दोपहरी की थकन सदा के लिए विस्मृत हो जाती है। तट पर स्थित गांधी वाटिका ने यहां की सुन्दरता को और भी सुशोभित कर दिया है। रात्रि में वृक्षों पर लगे हुए जलते बिजली के रंग बिरंगे फूलों के पेड़ व फव्वारे थके हुए पर्यटकों के साथ खेल-खेलकर उनका मनोरंजन करते हैं। यहां की संध्या-कालीन शोभा दर्शनीय होती है। तालाब में घूमने के लिए नावें व मोटर-बोट मिलती हैं जिनमें बैठकर लेक की सुन्दरता व शीतल मंद पवन का आनंद लिया जा सकता है।

आबू की महत्वपूर्ण इमारतों में जयपुर निवास, पालनपुर निवास, जयविलास महल, रेज़ीडेन्सी, लारेन्स स्कूल तथा ब्रह्माकुमारी आश्रम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यहां का पोलो का मैदान अब हाकी, फुटबाल, बालीबाल और टेनिस खेलने के उपयोग में लाया जाता है। यहां पर माउंट होटल, हिलव्यू होटल, सेन्ट्रल होटल, गुजरात हिन्दू लाज, नवकी लाज, भारतीय निवास, नवजीवन लाज आदि सुन्दर होटल हैं।

इसके अतिरिक्त सूर्यास्त प्वाइंट, राजाओं के महल, टांड राक, राजपूताना क्लब, गिरजाघर, बांस के जंगल में स्थित सुन्दर देवांगन आबू के प्रमुख आकर्षण हैं। ● ●

सोमशंकर व्यास

आपके सितारे

★★★★★★★★★★

(१५. ९. ७० से १४. १०. ७० तक)

मेष : आप ग्रहों के कुचक्र से इतने विवश हो चुके हैं कि बे-सबरी में प्रत्येक पंक्ति को इस कदर पढ़ते होंगे जैसे संभवत: डूबते को तिनके का सहारा ही मिल जाय। परिस्थिति ने आपको कहां तक भटका दिया है, यह स्वत: ही अनुभव कर रहे होंगे। ग्रहों के जाल में मानव मात्र कभी अत्यधिक परेशान होता है तो अचानक बेहद सुखी भी। आप अनिष्टकारक समय को बहुत कुछ अंशों तक लांघ चुके हैं। कुछ समय धैर्य और सावधानी की आवश्यकता अवश्य है, इसके पश्चात जीवन का सम्पूर्ण आनन्द ले सकेंगे। इस माह कोई विशेष परिवर्तन नहीं होगा। सैद्धान्तिक मामलों में सन्तान या पत्नी से तनाव की आशंका है। कोर्ट कचहरी के पुराने काम निपटेंगे। १५ से २५ सितम्बर तक समय शुभ रहेगा, शेष तिथियां सामान्य हैं।

वृषभ : मंगल ग्रह के कारण निजी समस्याओं का समाधान होगा। राशि के अधिपति शुभ ग्रह की स्थिरता से माह अनुकूल होगा। इस माह आप किसी महत्वपूर्ण कार्य को हाथ में ले सकेंगे। माह के अन्त तक कौटुम्बिक जनों से मानसिक कष्ट बनेगा, व्यापार में विशेषकर कपड़ा रूई आदि की मन्दी से चिंतित रहेंगे तथा बाजार के भाव गिरते नजर आवेंगे। तारीख़ १७ से ३० सितम्बर तक शुभ, शेष तिथियां सामान्य हैं।

मिथुन : गुरू शनि के आपसी दृष्टिपात इस माह आपको व्यापार अथवा नौकरी दोनों में ही लाभ पहुंचावेंगे। तारीख २० सितम्बर से स्थिति में और सुधार होगा। मांगलिक कार्यों में रुचि बढ़कर शुभ कार्यों में व्यय की सम्भावना माह के अन्त में बनेगी या यात्रा में व्यय होगा। शिक्षा अथवा कारखानों में बेरोज़गारी की समस्या हल हो सकेगी अर्थात इन क्षेत्रों में प्रयत्न से लाभ मिल सकेगा। १८ से ३० सितंबर तक शुभ तथा १० से १४ अक्टूबर मध्यम, शेष तिथियां सामान्य हैं।

कर्क : अस्थिर प्रकृतिकारक राशि अधिपति होने से इस माह आप भ्रमणशील रह कर सन्तोषजनक स्थिति तक नहीं पहुंच सकेंगे। स्वास्थ्य में

मन्दाग्नि, वायु विकार आदि का शिकार होंगे। यह गत्यावरोध समय माह के मध्य तक बना रहेगा। फजूल खर्च से बचें। राज्य पक्ष या नौकरी से प्रतिष्ठा एवं शान्ति बनेगी। आय के अन्य स्रोत मन्द रहेंगे। शत्रु पक्ष भी सामान्य चिन्ता का कारण बनेगा। २० से २५ सितम्बर शुभ तथा ७ से ११ अक्टूबर नेष्ठ सूचक समय रहेगा। शेष तिथियां सामान्य हैं।

सिंह : राहु-केतु के कारण मनोनुकूल वातावरण से वंचित रहेंगे। फिर भी आपके स्वाभिमान को ठेस नहीं पहुँचेगी और न कार्य में विघ्न उपस्थित होंगे। व्यय की आवश्यकताएं समय समय पर पूर्ण होकर कौटुम्बिक शान्ति को बनाये रखेंगी। माह के मध्य स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान देवें तो उत्तम रहेगा। इस बीच यात्रा न करें। विघ्न और फिजूल खर्च ये दो ही इस समय आपका पग-पग पर पीछा करते रहेंगे, सुख-शान्ति अति अल्प अनुभव करेंगे। १३ से २८ सितम्बर तक व्यापार-नौकरी में शुभ, शेष तिथियों में स्वास्थ्य के लिये सावधानी आवश्यक होगी।

कन्या : यह माह आपके लिये सामान्य कष्टप्रद बनेगा। नौकरी अथवा व्यवसाय में अरुचिकर कार्य विघ्न उपस्थित करेंगे। गृह-कलह आपसी रंजिश में बदलेगी। धर्मपत्नी को मासिक रोग संभावित है। मंगल ग्रह का आपकी राशि पर आना शनि के साथ षड़ाष्टक योग बना रहा है। माह के अन्त तक सावधानी अत्यावश्यक है। यात्रा एवं वाहन के उपयोग त्याज्य रखें। तारीख २५ से ३० सितंबर तक शुभ, १ अक्टूबर को धन हानि से बचें। शेष तिथियां सामान्य हैं।

तुला : माह के अन्त तक गृह स्थिति सुदृढ़ बनी रहेगी। व्यापार में प्रतिकूल लाभ की सम्भावना बनेगी। स्वराशिगत शुक्र का प्रवेश किसी मांगलिक कार्य की सूचना दे रहा है। ८ अक्टूबर तक बुध आपका साथ देकर व्यापार में अच्छा लाभ तथा प्रतिष्ठा देगा। इस स्थिति को देखते निःसंकोच कहा जा सकता है कि जो भी कार्य आप हाथ में लेंगे सफलता अधिकतर मिल सकेगी। शत्रु से भय माह के अन्त तक रहेगा। १५ से २६ सितम्बर तक स्वास्थ्य एवं आकस्मिक दुर्घटना के प्रति सतर्क रहें। २७ सितम्बर से ग्रहबल उत्तम होगा।

वृश्चिक : सांसारिक चिन्ता दिनों दिन आपको परेशानी के जाल में खींचती चली जा रही है और आप भी चुम्बकीय शक्ति के समान उसमें सिमटते जा रहे हैं। लेकिन केवल चिन्ता ही करते रहने से कार्य में गति नहीं आ सकती। परिश्रम को महत्व देना आवश्यक है। आप चाहे तो भूमि से अथवा सहयोगी व्यवसाय पार्टनरशिप आदि से लाभ उठा सकते हैं। तारीख १५ से ३० सितम्बर तक अप्रिय घटना से सावधान रहें, १ से १४ अक्टूबर तक समय उत्तम रहेगा।

धनु : आपकी राशि के पंचम शनि इस माह आपके मन में अस्थिरता एवं चंचलता उत्पन्न करेंगे। आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने से आप किस मार्ग को श्रेयस्कर समझते हैं अथवा किसको हीनतम यह मान न रख कर उसी पथ को अपना लेते हैं जो भावी जीवन के लिये हानिप्रद हो सकता है। अतः इस माह मन को धैर्य एवं संयम की विशेष आवश्यकता है, अन्यथा भटकने की

संभावना रहेगी।

१ से ११ सितम्बर तक समय श्रेष्ठ है। अक्टूबर की प्राय: सभी तिथियां सामान्य हैं।

मकर : ग्रह स्थिति इस माह मध्यम फलकारक बनी रहेगी। माह के प्रथम चरण में किसी महत्व-पूर्ण कार्य, मुकदमे या भूमि संबंधी मामले में व्यस्त रहेंगे। इस बीच अन्य क्षेत्रों में शिथिलता रहेगी अर्थात नौकरी अथवा व्यवसाय में अवकाश ग्रहण करेंगे। अधिकारी वर्ग से अप्रिय तनाव माह के अन्त में सामान्य चिन्ता का विषय बनेगा। स्थानान्तर या प्रमोशन भी संभव है।

१५ से २० सितम्बर तक तथा ४ से १४ अक्टूबर तक उत्तम व २१ सितम्बर से २ अक्टूबर तक सामान्य।

कुम्भ : माह का प्रथम चरण किसी गहरी चिन्ता में व्यस्त रखेगा। आपको उदर विकार एवं कब्जी की शिकायत बनेगी। राहु का स्थिर होना तथा केतु का दृष्टिपात करना, व्यापार में गति अवरोधक बनेगा। माह के मध्य में पारिवारिक चिन्ता बनेगी। शुभ कार्यों से रुचि हटना एवं शत्रु का आप पर सामान्य विजय पाना सम्भव है। सांसारिक माया-मोह से विरक्ति होगी। १५ से २७ सितम्बर तक विशेष नेष्ठ-कारक, पश्चात २८ सितम्बर से १० अक्टूबर तक उत्तम है।

मीन : राशि के अधिपति ग्रह इस समय अष्टम में चल रहे हैं। परिवार की वृहद समस्याएं आय के स्रोतों से कहीं अधिक मुंह खोले सम्मुख मिलेंगी। उनको येनकेन प्रकारेण सुलझाने के प्रयत्न में माह के अन्त तक प्रयत्नशील रहेंगे। माह के मध्य कहीं से आकस्मिक लाभ के अवसर मिलने की पूर्ण सम्भावना है। शत्रु एवं मामा पक्ष से बीच बचाव माह के मध्य तक अत्यावश्यक रहेगा। सम्भव है किसी पुराने लेन देन के सिलसिले में अप्रिय घटना हो गुजरे। माह के प्रथम चरण में यात्रा एवं वाहन का उपयोग न करें। १५, २३, २७, २८ सितम्बर अशुभ, शेष तिथियां मध्यम फलदायी बनेंगी। ●●

कु० उषा व्यास 'छवि'

ब्रह्म अभिनन्दन

साथी,
सच कहना, तुम आये,
ज्यों
वंध्या वसुंधरा पर अनजाने
सुखद श्याम घन छाये
नीरव निशीथ में
खुले खुले वातायन से
चुपचाप चली आयी मृदु चांदनी के
शुभ्र वृत्त में
लिपटते हुए आती है लाज
लगता है शीत
उभरता है अधरों पर एक विशृंखल सा गीत
एक अछूती पुलकन से हिय भर आया
फिर एक अजानी श्रद्धा से आहूत
प्राणों ने गाया
उस सरस परस में कैसा था आमन्त्रण ?
टूट गये कटु भावों के सब छन्द बंध झनझन
उस अलसित दृग-युग का धीरे से कंपना
बाकी सब समय पराया है
बस,
उतना क्षण अपना
थी उस क्षणांश में भर आयी
कैसी मृदुता और उष्णता
आया टकराया, दुर्निवार उर की लहरों में
भावों का फ़ेन उफ़नता
मैंने सोचा, मैंने तो
सदा सदा ही
यथार्थ के आधे स्वप्न सजाये
हर भोर होने से पहले
काली, और काली, और काली
रात होती है
हां सच, दूबों के तीखेपन पर ही तो
शीतल नीहार
सोती है
क्षितिज के उस पार फटने को हो आया कुहासा
नीलाम्बर पनघट पर
नक्षत्र कलशों संग डूबने जा रही निराशा
मेरे कालिम जीवन की यवनिका उठाने
रंगिणी उषा का स्वर्णालोक ले
निःस्वर उतरे अंतरिक्ष से
तुम महिमामय परम ब्रह्म
मुझ माया के नीलम मानस में
बिम्बित-प्रतिबिम्बित होने को
क्या मेरे रीते आंचल को
रसमज्जित करने आये ?
साथी,
सच कहना।

समाचार दर्शन

● भगवान श्री कृष्ण का जन्म-दिवस गीता-भवन में श्री सनातन धर्म सभा और धर्मार्थ ट्रस्ट की ओर से २३, २४ और २५ अगस्त १९७० को बड़े समारोह के साथ मनाया गया जिस में स्थानीय विद्वानों और संगीत कलाकारों के अतिरिक्त बाहर से स्वामी प्रकाशानन्द, प्रो० रमेश प्रकाश शास्त्री, पं० देवदत्त, पं० त्रिलोकीनाथ और स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती पधारे।

● २३ अगस्त १९७० को सायं ५ बजे गीता-भवन से भगवान की शोभा यात्रा निकाली गई जिसके साथ श्री रघुनाथ जी के दिव्य-रथ के अतिरिक्त स्थानीय झांकियां और भजन-मण्डलियां सम्मिलित हुईं। कृष्ण लीला गीता-भवन में २४ व २५ अगस्त को वृन्दावन रास-मण्डली द्वारा अभिनीत हुई।

धर्म मार्ग के प्रबन्ध सम्पादक श्री राजेन्द्र मोहन कौशिक ने पिछले दिनों आस्ट्रेलिया की ५० कविताओं के हिन्दी अनुवाद का कार्य सफलतापूर्वक पूर्ण कर लिया। ३१ अगस्त १९७० को दिल्ली में आस्ट्रेलियन उप-उच्च आयुक्त श्री लॉरी को कविताओं का हिन्दी संस्करण भेंट करते हुए उन्होंने आशा व्यक्त की कि यह प्रयास भारत-आस्ट्रेलियाई सांस्कृतिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करेगा। स्मरण रहे कि श्री कौशिक इससे पहले ५० कैनेडियन कविताओं का हिन्दीकरण कर चुके हैं। वे निकट भविष्य में जर्मनी और हंगरी की कविताओं का अनुवाद करने वाले हैं।

● धर्मार्थ ट्रस्ट की कटरा स्थित धर्मशाला के १७ कमरों की संख्या पार्टीशन द्वारा बढ़ाकर ३४ कर दी गई है। आशा है कि इस प्रकार अधिक यात्रियों को धर्मशाला में ठहरने की सुविधा प्रदान की जा सकेगी। निकट भविष्य में सराय की दूसरी मंज़िल भी निर्मित होगी।

● कटरा तथा वैष्णो देवी के बीच में आने वाले आदि कुमारी पड़ाव और देवी दरबार के होटलों का आधुनिकीकरण किया जा रहा है। शीघ्र ही उन्हें मेज़, कुर्सियों आदि से सज्जित किया जाएगा।

● बाणगंगा में स्त्रियों तथा पुरुषों के नहाने के लिये पक्के घाटों का निर्माण अब लगभग पूर्ण हो चुका है। इस सुविधा के मिलने से स्नानार्थियों की एक पुरानी मांग धर्मार्थ ट्रस्ट द्वारा पूरी कर दी गई है।

मुनि श्री सुशील कुमार जी की अपील

मुझे यह सूचित करते हुए गौरव का अनुभव हो रहा है कि अहिंसा के सर्वांगीण व्याख्याकार प्रभु महावीर का २५ सौवां निर्वाण दिवस १९७४ में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मनाने का देश के सर्वोच्च नेताओं और समाज-सेवियों ने निश्चय किया है।

महासमिति का विश्वास है कि मानवीय अभ्युदय और विश्व के अस्तित्व के लिये गत २५ सौ वर्षों में अहिंसा का सार्वभौम सिद्धान्त प्रभावशाली विकल्प के रूप में धीरे २ आविर्भूत हुआ है। महावीर के जीवनोदय से लेकर आज से पिछले २५ सौ वर्ष हिंसा के विरुद्ध अहिंसा की विजय-यात्रा के रूप में अंकित किये जाएंगे क्योंकि आज वैचारिक संघर्षों को मिटाने के लिये विरोधी विचारों में सत्य की जिज्ञासा और सत्य के अनन्त पहलुओं को जानने के लिए भगवान महावीर के बताए अनेकान्त-दृष्टि के सिवाय दूसरा कोई चारा नहीं।

शोषण और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध समानता और अपरिग्रह के सिद्धान्त पर महावीर ने सब से अधिक ज़ोर दिया। मानव जाति में व्याप्त ऊंच-नीच, जात-पांत और वर्णभेद को महावीर कलंक की तरह मानते थे। किसी भी प्राणी को पीड़ा पहुंचाने की प्रवृत्ति से ही भय और वैर के दोष बढ़ते हैं और मानसिक संतुलन बिगड़ता है। सबको जीने का हक है और सब अभ्युदय के पात्र हैं–पूर्ण विकास एवं आत्म-नियन्त्रण के द्वारा ही उसे प्राप्त किया जा सकता है। सब जीवों को अपनी आत्मा के समान मानना और समस्त विश्व से एक कुटुम्ब की तरह व्यवहार करना ही महावीर की अहिंसा का निचोड़ है। समाज के नये मूल्यों को निर्धारण करने में महावीर के विचारों ने जीवन और जगत के सभी क्षेत्रों को उन्नत बनाने के लिये कितना योगदान दिया है और कितना उनसे लाभ उठाया जा सकता है यह इतिहास के विद्यार्थी और सभ्यता तथा संस्कृति को भावी विनाश से बचाने के लिए जुटे हुए लोग उनके उपदेशों से लगा सकते हैं।

आज आवश्यकता है कि मानवीय विकास की दैवी-संभावना के रूप में प्राप्त महावीर जैसे सन्तपुरुषों के आत्म-चिन्तन एवं दिव्य-दर्शन को सार्वजनिक रूप से प्रचारित किया जाय। एतदर्थ तीर्थंकर महावीर २५वीं शताब्दी महासमिति का प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी की अध्यक्षता में गठन किया गया। इसमें देश के सर्वोच्च नेताओं को आमन्त्रित किया गया है, जैसे—श्री निजलिंगप्पा, श्री मोरारजी भाई देसाई, श्री जयप्रकाशनारायण, श्री जगजीवनराम, श्री अटलबिहारी बाजपेयी, श्री प्रकाशवीर शास्त्री, श्री बीरेन्द्र मुखर्जी, श्री यशवन्तराव चव्हान आदि और इन सभी नेताओं ने सम्मिलित होने की स्वीकृति दी है। अभी इसके लगभग १६० सदस्य हैं। समिति का विश्वास है कि राष्ट्रीय समिति और प्रबन्ध समितियों के माध्यम से यह महासमिति काम करने लगेगी तो काफी संख्या में सामान्य सदस्य बनते देर नहीं लगेगी।

माननीय श्री राष्ट्रपति गिरि इसके प्रमुख संरक्षक हैं। और विदेशों के राष्ट्राध्यक्षों को भी संरक्षक-पद के लिये लिखा जा रहा है। मैं आप से अनुरोध करता हूं कि आपका भरपूर सहयोग ऐसे अहिंसा के देवदूत की शताब्दी मनाने के लिये प्राप्त हो और देश एवं विदेश के सभी नेताओं एवं सभी समाजसेवियों को इसमें शामिल होने के लिये आमन्त्रित करता हूं।

इस अंक के लेखक

१. श्री राजेन्द्र मोहन कौशिक
१०८—मुहल्ला पठानां
जम्मू तवी.

२. डॉ० प्रशान्त कुमार वेदालंकार
२४/१५४, शक्ति नगर
जी० टी० रोड
दिल्ली—७.

३. श्री कमलाकान्त हीरक
बी. २२/१३८
शंकूधारा
वाराणसी.

४. प्रो० जगदीश प्रसाद द्विवेदी
राजकीय आयुर्वेदिक कॉलेज
जम्मू.

५. डॉ० भंवर लाल जोशी
१३७—बसन्त भवन
आदर्श नगर
अजमेर.

६. डा० सुधा रानी शर्मा
१८६ डी०—सिविल लाइन्स
बरेली.

७. श्री शोभनाथ पाठक
राजकीय उच्च विद्यालय
मेघनगर.
ज़िला झाबुआ (म० प्र०)

८. डॉ. सुरेश के. अंजुम
राम कुटीर
मेंहदावल
बस्ती (उ० प्र०)

९. श्री ओम प्रकाश पांडेय
३४६ - कानून गोयान
बाराबंकी (उ० प्र०)

१०. श्रीमती सुशीला देवी बैस
द्वारा ठाकुर विश्वनारायण सिंह
सेंट्रल ब्रेल प्रेस
देहरादून (उ० प्र०)

११. श्री हरिशंकर शर्मा
३२९/५—शास्त्री नगर
कानपुर—५.

१२. ज्यो. वि. सोमशंकर व्यास
बड़े गणेश
उज्जैन (म० प्र०).

१३. कु. उषा व्यास 'छवि'
द्वारा पं० दीना नाथ व्यास
गान्धी चौक
कठुआ (जम्मू)

१४. डॉ. कुमार 'विमल'
निदेशक
बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्
पटना.

पर्व एवं व्रत

(१५ सितम्बर से १४ अक्टूबर तक)

दिनाङ्क	वार	विवरण
	सितम्बर	
१५	मंगलवार	पूर्णिमा एवं सत्यनारायण व्रत
१६	बुधवार	कन्या संक्रांति (पुण्यकाल सायं ५/१२ बजे से), पितृ पक्ष (श्राद्ध) प्रारम्भ
१७	बृहस्पतिवार	सायं ६/५९ बजे पंचक समाप्त
१८	शुक्रवार	श्री गणेश चौथ व्रत (चन्द्रोदय रात्रि ८/८ बजे)
२३	बुधवार	सौभाग्यवती मातृ नवमी
२६	शनिवार	इन्दिरा एकादशी व्रत
२७	रविवार	सन्यासियों का श्राद्ध, प्रदोष व्रत
३०	बुधवार	सर्व पितृ श्राद्ध, पितृ पक्ष समाप्त
	अक्टूबर	
१	बृहस्पतिवार	शारदीय नवरात्र प्रारम्भ, श्री वैष्णो देवी यात्रा प्रारम्भ
२	शुक्रवार	दूज के चांद के दर्शन, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जयन्ती
५	सोमवार	ललिता पंचमी
८	बृहस्पतिवार	श्री सरस्वती पूजन, दुर्गा अष्टमी, श्री ज्वालामुखी यात्रा
९	शुक्रवार	श्री महानवमी, नवरात्र समाप्त
१०	शनिवार	विजय दशमी (दशहरा), मेला दशहरा कुल्लू प्रारम्भ
११	रविवार	पापकुशा एकादशी व्रत, प्रातः ४/१८ बजे से पंचक शुरू
१२	सोमवार	प्रदोष व्रत
१४	बुधवार	कोजागरी पूर्णिमा, शरद पूर्णिमा, श्री बाल्मीकि जयन्ती

भारतीय ज्योतिर्विज्ञान अनुसन्धान संस्थान

लक्ष्मीनगर, सहारनपुर (उ० प्र०)

विद्यासागर शर्मा द्वारा धर्मार्थ ट्रस्ट, जम्मू व कश्मीर, जम्मू, के लिए सम्पादित [illegible] मुद्रित [illegible] प्रकाशित।
मुद्रणालय : चांद प्रेस, गुमट गेट, जम्मू (तवी)।